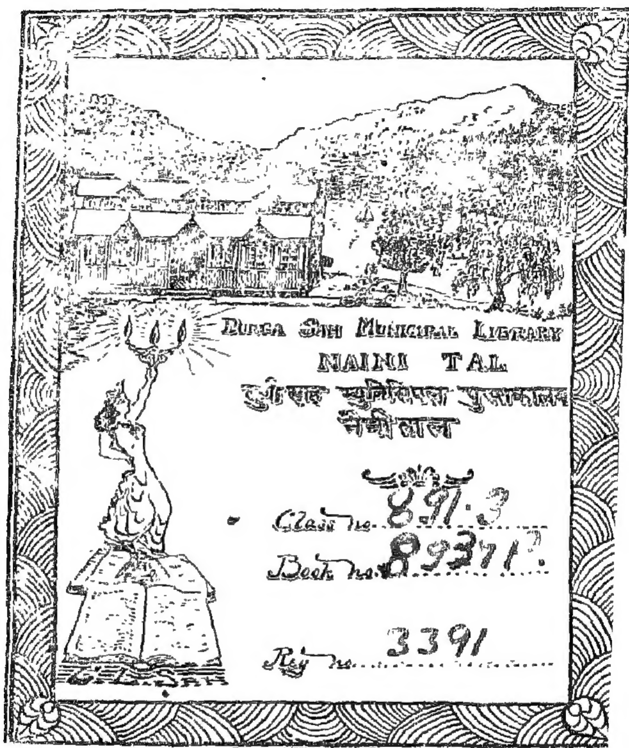




पथ का अंत ही क्यों ? आदि और मध्य होगा । यूं तो अंत में ही आदि और मध्य उत्थान और अवसान आ जाता है और के आरम्भ में ही उसका अंत छिपा रहता ठीक जन्म जीवन और मृत्यु की तरह, लिए कहीं से भी बात को उठा लीजिए पूरा हो जाता है ।

संतसमागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय यह दो दुर्लभ साधन तुलसीदास जी ने थे । जाने वे कौन से संत और कैसी था भी जिनकी ओर तुलसीदास ने किया था, आज के युग में तो सर्व वस्तुएं सही हो है, हरिकथा और संत-म ।

हरिकथा के माध्यम से हरिकथा विशारद अपने लिए जीवन के सब सुख बटोर लेते हैं श्रोताओं की श्रद्धा उन्हें फलती है । स्वर्ग का सुख भोग लेते हैं, भक्तों की उनकी पूंजी और अर्चना के बलपर । जीवन के सहस्रों झमेलों से तंग आकर जीवन की उलझनों को सुलझाने के संतों की शरण जाते हैं, मानव में देवत्व ईश्वरत्व की झलक पाने का यत्न हैं, इसी यत्न में अपनी मानवता से भी खो बैठते हैं, सूझ बूझ और बुद्धि को ना के वेग में बहादेते हैं, और जिन में देवत्व की स्थापना की जाती है, वे अपनी अपना वंदन और अर्चन होता देख, से पत्थर हो जाते हैं, पत्थर के देवता गए होते, देवत्व आ नहीं पाता मनुष्य-को भी खो देते हैं । ऐसे ही संतों के गम के दृश्य सात आठ कहानियों में का प्रयत्न किया था,

इस लड़ी की दो कहानियां 'निश्चय' और 'गोपियों के बिना रास' सरिता में छप चुकी है ।

'संतसमागम' के अनुभवों में "पथ का अंत" का अनुभव अन्तर्वेदना के रूप में इतना दाहक था कि यदि मस्तिष्क में रहता मस्तिष्क और हृदय को मथन करता रहता दोनों ही इस कष्ट को सहन कर पाते, दिल टूट हो गया था, मस्तिष्क भी फट जाता इस लिए लेखनी के सहारे कागज पर सबकुछ उलट दिया । पाठकों को कष्ट देने का साहस इसलिए कि संभव है इस युग में सरिता के पढ़े और भी कई हों, उनका कल्याण हो जाए, वस्तु स्थिति और सत्य स्पष्ट हो जाए, इसमें "कहां" तक सफलता मिली है, यह तो जाने ही जाने अपना कर्तव्य तो अपने सामर्थ्य प्रयत्न तक ही सीमित है, सो प्रस्तुत है ।

लेखक

नोट:—उपन्यास में वर्णित सभी नाम और स्थान कल्पित हैं ।

पथ का अन्त

लेखक
सत्य देव शर्मा

रजनी साहित्य सदन
देहली

दिसम्बर १९५५

मूल्य दो रुपये चार आने

रजनी साहित्य सदन
२९९ चावड़ी बाजार दिल्ली द्वारा
प्रकाशित तथा रामा कृष्णा प्रेस, कटरा नील, दिल्ली में मुद्रित।

पथ का अन्त

१

हीरालाल, गुरु जी का बड़ा भक्त था। घर का गुजारा उसका अच्छा न था, साधारण यजमानी पुरोहिताई से पूरी तरह गुजर बसर न होती थी। छोटा भाई भवानी दास तो कुछ पढ़ लिख गया था और उसने अपने कस्बे के गायन मास्टर चौरंगी लाल से जो उनका थोड़ा बहुत सम्बंधी था, बिना कुछ लिए दिए गाना बजाना भी सीख लिया, आवाज अच्छी थी, इसलिए राधेश्याम की तर्ज पर रामायण महाभारत की कथा बांचकर कुछ न कुछ कमा ही लेता था, उसका विवाह भी हो गया था, पर हीरालाल की हालत पतली थी। कभी कोई मजदूरी कर लेता, कभी दूध बेचता, कभी लकड़ी के टाल पर काम करता, कुछ न होता तो गुरु जी के डेरे की रोटियाँ तोड़ता, उनका काम भी कर देता। गुरु जी के डेरे में रोटियों की कमी न थी, नगर आबाद रहे,—दिन की रोटियाँ घरों से भिक्षा के रूप में माँग ली जाती थीं। पहले तो गुरु जी स्वयं माँग लाया करते थे, परन्तु साहिबेजायदाद होने के बाद गुरु जी ने तो यह काम छोड़ दिया था परन्तु उनके दूसरे चेले चांटे यह काम करते थे, और रात का भोजन वहीं पकता था। वह भी पहले गुरु जी ही बना लिया करते थे, पर उनके छोड़ देने पर डेरे में रहने वाला कोई दूसरा साधू बना लेता था लेकिन ज्यों-ज्यों भक्तों की संख्या बढ़ने लगी, तो यह काम किसी स्त्री के सुपुर्द करना पड़ा।

हीरालाल को डेरे की तरह तरह की रोटियाँ और बारह मसाले की चाट सी घर-घर की सब्जी बड़ी स्वाद लगती पर किसी दिन संध्या समय उसे भी रोटियां सेंकनी पड़तीं तो सारा मजा जाता रहता। एक तो दस बीस ही नहीं कभी-कभी तीस पैंतीस आदमियों का भोजन, फिर सबको खिलाकर खाओ, जान आफ़त में पड़ जाती, इतना मर

खप कर जाओ तो घर में कोई ऐसा न था जो धीरज दिलासा दे— पर हाँ जिस दिन गुरु जी के यहाँ खीर हलवा बनता तो हीरालाल उछल-उछल पड़ता, सारा काया-कष्ट भूल जाता, परन्तु हलवा खीर चढ जाते तो वह अंगडाईयाँ तोड़नें लगता, ऐसा कोई न था जो उसके मर्म की बात समझता और उसकी शादी कर देता, इसी चिन्ता में उसने कई रातें काट दी थीं, और वह चालीस का हो गया था। पहले तो चौरंगी लाल का साथ था, और वे दोनों दुःख सुख कह सुन लेते थे, और मन का बोझ हलका करने धन्नी के पास चले जाया करते थे।

धन्नी रिश्ते में दोनों की भौजाई लगती थी, विधवा थी, पर बड़ी हंसमुख और वाचाल बहुत सुंदर न सही, अच्छी खासी औरत तो थी, वह दोनों का मान करती और दोनों से उसे प्रेम भी था, लेकिन जब तब मैदान चौरंगी लाल के हाथ ही रहता, वह उम्र में हीरा से छोटा उससे अधिक सुंदर और जवान था, इस पर वह गायन विद्या का माहिर और सब से बड़ी बात यह कि गुरु जी का छोटा भाई था, इसीलिए धन्नी के विशेष अनुग्रह का पात्र था। हीरालाल कभी-कभी जल उठता, सेवा वह करे, धन्नी की रक्षा में जान वह दे और मेवा खाए चौरंगी। परन्तु धन्नी बड़ी काइयां था, वह उसे भी अपने प्रसाद से वंचित न रखती, अतः मुआमला बढ़ने न पाता। जैसा कुछ था वह भी अच्छा था, निभती जा रही थी पर इतने में गुरु जी की कृपा से चौरंगी लाल की शादी हो गई, वह हीरा से अलग-अलग कटा-कटा रहने लगा, और धन्नी देखते ही देखते जाने कब ढल गई, और काम की न रही, अब तो वह यजमानों की रोटियाँ पकाने का धंधा ही कर सकती थी, सो किया करती थी, और हीरा के मन की कोई न सुनता था।

इधर गुरु जी के भक्तों में वृद्धि हो रही थी, अमृतसर के कृष्ण लाल मोहली, जालंधर के वैद्य शत्रुघ्न दास, दिल्ली के विजयचंद और सेठ विष्ण स्वरुप, रघुवर नारायण, बरेली के पं० रघुबीर लाल दोषी, कानपुर के सेठ अर्जुनदास मेहता और इन

सबसे बढ़कर हिन्दुस्तान के नामी ज्योतिषी ज्योतिस्वरुप वर्मा, और भी अनेकों गृहस्थ सपरिवार उनके शिष्य हो चले थे वे स्वामी जी के दर्शनों को आते तो हफ्ता दस दिन जरुर ठहरते, वे तो भिक्षा की रोटियाँ न खा सकते थे, अतः रोटी पकाने वाली की जरुरत और भी तीव्रता से अनुभव होने लगी। रही किसी रसोइये के रखने की बात सो गुरु जी को अनुभव था कि ५०) लेकर भी कोई आदमी इतना काम नहीं कर सकता और फिर जैसी रोटियाँ औरत सेंकती है मर्द के हाथ में वह लज्जत कहाँ ?

जरूरत ईजाद की माँ है, हीरालाल ने यह कहावत सुन रक्खी थी, इसलिए अवसर देखकर एक दिन उसने गुरु जी से प्रार्थना की—

स्वामी जी, आपकी ही नहीं मेरी चिन्ता भी आज दूर हो गई, इतना कह वह लजाया-लजाया सा हंस दिया, और आगे की बात अटक के गले में ही रह गई।

'कैसी चिन्ता हीरा'

'महाराज, आपको चिन्ता है, कोई रोटी बनाने वाली चाहिए।'

'हां सो तो हम इस सोच में हैं ही—

'तो बस मेरा विवाह कर दीजिए—मेरा घर बस जाएगा, आपकी रोटी पकती रहेगी।

'वह कैसे ? गुरु जी मुस्करा कर बोले

'सीधी सी बात है, हीरा उत्साह से कहने लगा, कोई अच्छी सी ब्राह्मणी मिल जाए—नित्य दोनों समय आपके डेरे का भोजन बनाए—यूं तो आपकी और मेरी रोटी पक जाएगी, न तनख्वाह देने का डर न उसके भागने का भय, और मेरी घर वाली रहेगी मेरे घर——डेरे में स्त्री का क्या काम, बस हींग लगे न फिटकड़ी, रंग भी चोखा आए।

रंग तो चोखा आ जाएगा, पर हींग फिटकड़ी क्या चूना हल्दी भी कम न लगेगी, विवाह कोई खेल तो है नहीं, औरतें भी सड़कों पर

बैठी नहीं मिलती कि उठाई और मगा लाए, समय पर सब काम होता है, तब तक हमारा काम कैसे चलेगा ?

'उतने अर्से के लिए मैं कोई प्रबंध कर दूँगा, न हुआ तो धन्नी की मिन्नत कर लूँगा, वह अपने जाट यजमानों के भी रोटी बनाने चली जाती है, सो यहीं सब काम कर जाया करेगी, उसे आप धोती कुर्त्ती, दो-चार रुपए दे दीजिएगा, बस जरा लालचन है, वैसे स्वाभाव की बुरी नहीं, ढेरों काम कर लेती है, महीने दस दिन की बात है। फिर तो मेरी घर वाली आ ही जाएगी।

'महीने दस दिन में, बेर तो है नहीं कि तोड़ कर मुंह में डाल लिया, जब कि बेरी में भी कांटे होते हैं।"

'आम में तो नहीं होते स्वामी जी, आप चाहें तो पल भर में मेरे आगे पीछे एक क्या दस औरतें नाचती फिरें, आप चाहें तब न, ईश्वर आपके बस में है, लोग आपको साक्षात परमेश्वर ही मानते हैं, भूखों के आप भगवान हैं, फिर मेरे लिए ही कृपा का यह हाथ आगे क्यों नहीं बढ़ता ?

"अपनी सूरत देखी है शीशे में, चालीसे हो गए हो, पल्ले तुम्हारे कानी कौड़ी नहीं, और शादी की धुन सवार है।"

'यह सब गुण होते तो फिर कमी ही क्या थी, गुरु जी, अब तो आपका ही सहारा है, मुझ गरीब की नैय्या भी लगा दीजिए पार।

अच्छा जाओ, अपना काम देखो, यदि हम दुनियादारों के झमेले में पड़े रहें तो भगवान को क्या जवाब देंगे, और यह भगवा वेष किस लिए धारण किया है, तुम्हारे लिए बीवियां जुटाने में, देखो तीन बज रहे हैं, दस दिन बाद गुरु पूर्णिमा पर भक्त जन इकट्ठे होंगे सो पहले से प्रबंध करना है, मशीन पर आटा पीसना दे आओ।

'अच्छा गुरु जी, जो आज्ञा, पर मेरी प्रार्थना को न भूलिएगा, इतना कह हीरा तो चला गया और अपने सिंहासन पर बैठे गुरु जी सोच में मग्न हो गए।

२

अपने नगर नूरपुर ही नहीं स्वामी नाथूराम जी का नाम दूर-दूर तक था। नूरपुर के तो वे नूर ही कहलाते थे, इसी नगर की धरती पर उनका जन्म हुआ था, इसी की मिट्टी में खेले, खाए, पले, बड़े हुए। १५-१६ वर्ष की अल्पायु में ही साधु हो गए। इतना यश और मान अपनी जन्म भूमि में शायद ही किसी को मिला हो। लोग उन्हें शुकदेव का अवतार मानते थे, आज के युग में ऐसा पुरुष नहीं मिल सकता जिसे जीवन में कभी भी नारी के प्रति मोह उत्पन्न न हुआ हो, पर स्वामी जी इसका अपवाद थे।

बड़े सौम्य, सुशील, कर्म रत, सदा भजन भक्ति में लीन, हंसते हुए मुख पर कभी विषाद की रेखाएं नहीं, अपने में मस्त, सेवा भाव इतना कि भिक्षा मांग कर लाएं और साधु संत ही नहीं हर भूखे को खिलाएं, रास्ते पर चले जाएं तो मीलों मार्ग के कांटे चुनते रहें, प्राणी मात्र से प्रेम और सौहार्द। इसीलिए उनका सब जगह मान होता था, साधु-गृस्थ सभी वर्गों में उनका मान और यश था। दूर दूर तक उनके डेरे की चर्चा थी जहां से किसी भी वेष के साधु को जब तक वह चाहे मन चाहा आहार और रहने की जगह मिलती थी। उनके प्रभाव से ही डेरे में अन्न, वस्त्र, धन-पदार्थ किसी चीज की कमी न आती थी।

प्रायः वे नूरपुर में ही शहर के एक कोने पर बने अपने डेरे में ही रहते थे, मन ऊब जाता या कोई भक्त बुला लेता, तो जालंधर, हुश्यारपुर बरेली अमृतसर और फीरोजाबाद चले जाया करते थे। धीरे-धीरे उनके नाम और यश ने उनके क्षेत्र को बढ़ा दिया और वे दिल्ली, कानपुर लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ते वगैरह भी जाने लगे। उनकी परोपकार

वृत्ति जागरूक होती गई। भक्त बढ़े तो उनकी सेवा से गुरु जी की आय भी बढ़ी, भक्तों के ठहरने के लिए स्थान भी बढ़ाना पड़ा, सुख सुविधा का प्रबंध भी करना पड़ा, आमदनी खर्च का हिसाब किताब भी रखना पड़ा, स्वार्थ न सही परोपकारार्थ उन्हें अपनी आय में वृद्धि के विचार भी सताने लगे, और डेरे में रोटी बनाने के लिए एक महाराजिन की आवश्यकता इस सिलसिले की पहली कड़ी थी, हीरालाल की बात उसके सामने उन्होंने भले ही उड़ा दी हो, पर मन में जरूर विचार कर रहे थे कि उसका प्रस्ताव बुरा नहीं—उसका काम बन जाए तो दोनों का पाप कटे, डेरे का भी और हीरा का भी। सो अब कि बार जन्माष्टमी पर जब वे फीरोजाबाद गए तो एक की जगह दो सप्ताह लगा आए। हीरा का काम तो किसी तरह हो गया परन्तु एक नयी उलझन में फंस गए, इसी उलझन के क्षोभ के कारण उनके चेहरे पर विषाद की रेखाएं पहली बार देखने को मिलीं।

हुआ यह कि फ़ीरोजाबाद में उनके बहुत से भक्त थे, श्रीराधा वल्लभभक्ति सत्संग तो उन्हीं के परामर्श और प्रयास से बना था। उसके सदस्य भी बहुत से भक्त लोग थे। बारी-बारी एक एक दिन अपने घर में वे स्वामी जी को ले जाते और अपना घर पवित्र करा अपने को धन्य मानते। फ़ीरोजाबाद में हीरा की बहिन ब्याही हुई थी, उसके घर भी वे गए और प्रसाद पा आए थे। वहीं के एक पंडितजी के घर में जीमनें गए तो उन्होंने प्रार्थना की—

स्वामी जी मेरे पुत्रों में से किसी का विवाह नहीं होता आपका आशीर्वाद हो तो मेरे बड़े पुत्र का कहीं सम्बंध हो जाए—ग़रीब हूँ, इसलिए कोई बात तक नहीं पूछता।"

स्वामी जी ने बूढ़े पंडित को धीरज दिलासा दिया, और आशीर्वाद भी कि शीघ्र ही भगवान कोई सिलसिला बना देंगे। स्वामी जी ने उनके लड़के को न तो देखा था, न उसके गुण अवगुण से ही परिचित थे पर पिता ने पुत्र की प्रशंसा कुछ इस तरह की कि जैसे श्रवण ने

उन्हीं के घर दुबारा जन्म लिया हो। इस तरह की बातें चल ही रही थीं कि मकान के साथ के पोर्शन में एक स्त्री पुरुष के लड़ने झगड़ने की आवाज़ सुनाई दी। पूछने पर वृद्ध पंडित जी ने बताया कि उनके मकान में ही वे किराएदार हैं, पति बाज़ार में हलवाई की दुकान करता है, उम्र में काफी बड़ा और कुरूप है, पर कमाई अच्छी है, बीवी तीसरी शादी की है, नौजवान और सुंदर पर बड़ी चालाक, यों तो बड़ी मिठ-बोली है, पर जहर की गंदल। हलवाई शक्की मिज़ाज का है, बस दोनों यों ही उलझते रहते हैं। और साथ ही उसने प्रार्थना की, कि महाराज कुछ उन पर भी दया की दृष्टि करें कुछ ऐसा मंत्र-तंत्र बताएं कि उनकी रोज़-रोज़ की लड़ाई बंद हो और वे आए दिन की चख चख से बच जाएं।

स्वामी जी मुस्करा दिए, आशीर्वाद दिया और चलने लगे तो बूढ़ी पंडिताइन ने भी आकर चरण स्पर्श किया, आंखों में जल भरकर हाथ जोड़ लिए—आपका ही आसरा है महाराज।

स्वामी जी ने धीरज दिया और अपने स्थान पर आ गए। दोपहर को स्वामी जी आराम करते थे और तीन चार बजे इक्का दुक्का भक्त आ जाते थे परन्तु वास्तव में यह समय स्त्रियों का होता था। वे आतीं, स्वामी जी उन्हें थोड़ी देर ही बैठने देते, एक दो उपदेश की बातें कहते और वे चली जातीं। पुरुषों का सत्संग रात्रि को होता था। आज स्वामी जी की जाने आँख क्यों न लगती थी, दोपहर को गर्मी बड़ी तेज थी, द्वार बंद थे, बिजली के पंखे चल रहे थे, कि इतने में श्यामकुमारी ने आकर द्वार खोला, स्वामी जी के चरणों में प्रणाम करके बैठ गई। स्वामी जी भी उठ बैठे।

श्याम कुमारी ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—मुझे पंडित जी ने आपकी शरण में आने को कहा था, शहर भर में आपकी दया और महानता का चर्चा हो रहा है, महाराज मेरा जीवन नरक समान हो रहा है, मां बाप ने इस हलवाई के पल्ले बाँध दिया

है, हलवाई, दिन रात मीठे और दूध में रहता है फिर भी इतना कड़वा और झक्की है, इतना जालिम कि क़साई से भी बढ़ गया है, इससे तो क़साई भी लाख गुणा अच्छे होंगे, क्या इस निरीह मनुष्य के पंजे से मेरा छुटकारा न करा देंगे, आपको ऐसा ही पुण्य लगेगा महाराज जैसा किसी गाय को राक्षस के हाथों से बचाने का। आप तो परोपकारी हैं, सुना है भगवान आपके वश में हैं...

वह कहती जा रही थी और उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी, उधर स्वामी जी न जाने क्या सोच रहे थे कि एक दम उनकी आँखें चमक उठीं—उन्हें हीरा की याद आ गई—निश्चयात्मक स्वर में बोले—

भगवान सब का कल्याण करते हैं अंधेरे में कहीं न कहीं से आशा की किरण फूट निकलती है, अच्छा जैसा हम कहेंगे, वैसा ही करना होगा, देखो मन को पक्का कर लो।

'मन कच्चा होता तो फिर आपकी शरण में ही क्यों आती।'

'अच्छा तो अब जाओ, स्वामी जी बोले, समय पर सब प्रबंध हो जाएगा'

श्याम कुमारी सीस नवा कर चली गई, और स्वामी जी फिर सोच मग्न सो गए।

तीसरे दिन स्वामी नाथूराम जी फीरोजाबाद के पास एक गाँव में अपने एक शिष्य थानेदार खूबसूरत लाल को दर्शन देने चले गए, उनकी अनुपस्थिति में हीरा फ़ीरोजाबाद आया और श्यामकुमारी के साथ ले नूरपुर चला गया, यह कार्य ऐसी ख़ामोशी के साथ हुआ कि कानों कान किसी को खबर तक न हुई, मक्खन में से बाल की तरह फीरोजाबाद से श्याम कुमारी निकाल ली गई, हलवाई दूध की कढाईयां मलता रह गया, घर का कोना-कोना छान मारा, कई दिन तक खुरपी खौंचा लिए ढूंढता फिरा, घर की जमीन भी कुरेद डाली, शायद आ जाएगी इसी आशा और अपनी बदनामी के भय से पुलिस को ख़बर भी न कर सका।

दो चार दिन बात उड़ी, फिर शांत हो गई, हलवाई अपने आँसुओं और आहों से कड़ाही में आ रहे दूध के उबालों को ठंडा करता और इस तरह उसका ग़म भी हलका होता जाता।

स्वामी जी गए तो थे दो दिन के लिए परन्तु खूबसूरत लाल की श्रद्धा की दलदल में ऐसे फंसे कि शीघ्र वापिस आ ही न सके और जब आए तो साथ ही साथ पंडित के लड़के का काम भी करते आए। उन्हीं के कहने से खूबसूरत लाल अपनी भतीजी का रिश्ता पंडित जी के लड़के के लिए ले आए और शगुन भी कर गए, चट मंगनी पट ब्याह। १५-२० दिन बाद का ब्याह भी पक्का हो गया। सारा नगर स्वामी जी की इस करामात पर वाह वाह कर उठा, बेचारे ग़रीब वृद्ध ब्राह्मण का घर फिर से आबाद होगा, लड़के के ब्याह के चाव में पंडित जी जवान हो गए, पंडिताइन तो जैसे एकदम छोकरी सी दीखने लगी, जगह-जगह भाग भाग कर सब काम करती, खुशी खुशी चारों ओर खुशी ....और फिर बारात सजी, स्वामी जी तो दोनों ओर के साझे थे, वर-वधु दोनों पक्ष उनका मान करते थे, परन्तु खूबसूरत लाल पर उनका अनुग्रह अधिक था, क्योंकि वह थानेदार था, समय पर काम आने वाली आसामी, और उसे भी गुरु जी के प्रति बड़ी श्रद्धा थी, इसलिए स्वामी जी सब से अलग पहले ही वधु पक्ष वालों के यहाँ जा डटे। पर जाने क्यों उनका माथा ठनकता था कोई विघ्न बाधा न उपस्थित हो, परन्तु उनकी चिन्ता यों ही दिखाई देती थी, सब काम यथा समय हो रहे थे।

बारात पैंथपुर में पहुँच गई। उसकी अगवानी धूम धाम से की गई, तब जूठा, टिक्का हुआ, साहे चिट्ठी पढ़ी गई, और अब दूल्हा रात के समय मिलनी पर मुकुट लगा घोड़ी पर सवार हो चल पड़ा, परन्तु ज्योंही दूल्हे की सवारी घर के करीब आई, उसने हठात घोड़ी पर से छलांग लगा दी, नीचे उतर आया। बाराती हैरान थे, दूल्हा भाग ही जाता, पर एक बलिष्ठ बाराती ने उसे जोर से पकड़ लिया, क्यों किधर

भागते हो ? दूल्हा टट्टी, पेशाब का बहाना न कर सका, तब तो किसी के संरक्षण में ही जा सकता था, भागना कठिन था। उसनें बिना किसी तरह की हील हुज्जत के कहा—मैं शादी न करूँगा ?

क्यों ? वृद्ध बाप चिल्लाया—

'मैं आपको नहीं बता सकता ?

बस बाप बेटा उलझ गए, सगे सम्बन्धी रिश्तेदार समझा-समझा कर थक गए, पर वह टस से मस न हुआ, इतने में कन्या पक्ष के आदमी भी देर हुई समझ वहाँ पहुँच गए—कुछ गोल माल की खबर स्वामी जी को भी लगी, वे भी भागे-भागे आए, खूबसूरत लाल भी आया, अब दूल्हा, बाप और बाराती ही नहीं, बाराती और कन्या पक्ष वालों में तू-तू मैं मैं होने लगी, क्षण भर में सारा गाँव इकट्ठा हो गया

यह क्या मखौल है, तुम हमारी इज्जत खराब करने आए हो, लड़का नहीं मानता तो हम जीता न छोड़ेंगे—

इतने में किसी मन चले ने दूर से कहा—लड़का नपुंसक है, शादी किसके साथ करोगे, भला हुआ बच गए।

बस आन की आन में बारात पर लाठियां बरसने लगीं, थानेदार ने स्वामी जी को आड़े हाथों लिया, बाराती जाने किस तरह अपनी जानें लेकर भागे, और स्वामी जी अपना सा मुंह लेकर फीरोजाबाद चले आए, वहां से अपना दंड कमंडल उठाया, नूरपुर आगए—खूबसूरत लाल कई वर्ष तक उनसे नाराज रहे और स्वामी जी के चेहरे पर विषाद की रेखाएं घूमने फिरने लगीं।

स्वामी जी इतने दिनों बाद नूरपुर लौटे थे। डेरे में भक्त जनों ने बड़े उत्साह के साथ उनका स्वागत किया और उन्हें हीरा के विवाह की बात सुनाई, जो वास्तव में अनहोनी थी। हीरा भी उनके आगमन की सूचना पाकर अपनी पत्नी समेत उनके दर्शन करने आया। श्यामकुमारी बहुत प्रसन्न न थी। हीरा, हलवाई से तो अच्छा था पर न तो जवान था और न पढ़ा लिखा बाबू ही, इसके अतिरिक्त कहाँ फीरोजाबाद शहर

और कहां नूरपुर कस्बा, शहर का जीवन फिर भी रंगीला होता है, लेकिन करती क्या ? और उसी दिन से उसे डेरे में रोटी बनाने का काम भी सौंप दिया गया। काम तो आसान न था, श्यामकुमारी का मन कुछ भारी भी हुआ, परन्तु इसमें साधु सेवा का श्रेय जो था, इसी लिए उस का नारी मन उपकार की भावना से थोड़ा खिल भी उठा।

डेरे में काम तो था ही परन्तु इतना सुख भी था कि लस्सी पानी, चाय दूध, साग सब्जी किसी बात की कमी न थी, और बाद में यह जानकर कि उसके घर का निर्वाह बहुत कुछ डेरे पर ही निर्भर है अपने काम को वह शौक से करने लगी। डेरे की समस्या हल होगई।

३

श्यामकुमारी के आने से डेरे की समस्या हल होगई—वह दोनों वक्त रोटी बनाती और अपने लिए जाती हुई घर ले जाती और पति पत्नी आराम से खाते, हीरा को घर बैठे चैन से मिलने लगी, वह खुश था परन्तु श्याम कुमारी उतनी प्रसन्न न थी, वह पति भी क्या जो निखट्टू हो, इधर स्वामी जी डेरे के प्रबन्ध से प्रसन्न थे परन्तु, गुरु पूर्णिमा आने वाली थी, दो महीने ही तो शेष थे, और खूबसूरत लाल उनसे रूठे हुए थे और उनका रूठना भी सच्चा था, पर स्वामी जी की यह चिंता एक दिन स्वयं ही मिट गई। खूबसूरतलाल की चिट्ठी आ गई, उसने बार-बार प्रार्थना की थी, गुरु महाराज अवश्य दर्शन दें, उसका बड़ा लड़का सख्त बीमार था, डाक्टर वैद्य जवाब दे रहे थे, लाख यत्न भी सफल न हो रहे थे। थानेदार की बीवी ने समझाया कि यह सब गुरु कोप है, ननद की लड़की के अपूर्ण विवाह का दोष वह भाग्य पर रखती

थी, गुरुदेव निर्दोष थे, वे क्या जानते थे, लड़के में कोई औगुन है या नहीं, तुमने व्यर्थ ही उनका अपमान किया, अब भुगतो।

खूबसूरत लाल के मन में बात बैठ गई, मरता क्या न करता, उसने गुरु जी को पत्र लिख दिया, उधर गुरु जी भी पुर्नमिलन के लिए आतुर थे, अतः डेरे का काम संत मेवा दास के सुपुर्द करके चल दिए और वहां उन्हें लगभग महीना दस दिन लग गए।

स्वामी जी तो खूबसूरत लाल के पुत्र के लिए वहां प्रार्थना करते रहे और डेरे में मेवादास का एक छत्र राज्य चलने लगा। संत मेवादास का आश्रम पास ही के एक छोटे से गांव में था परन्तु यदा कदा वह स्वामी जी की सेवा महीनों करता। स्वामी जी में उसकी बड़ी श्रद्धा थी और यहां खान पान की भी मौज थी। स्वामी जी को 'बाहर जाना होता तो मेवादास को ही डेरे का इन्चार्ज बना जाते।

मेवादास हरियाने का जाट था, देखने को सीधा सादा, भोला लेकिन बड़ा काईयां। जिस्म उसका लोहे की लट्ठ, सेरों हल्वा और खीर समेट जाए, काम करने पर आए तो दिनों न थके, लम्बे-लम्बे मजबूत हाड़, पांव, बलिष्ठ देह, शहतीर जसा कद, उससे यों ही लोग डरते थे, कहीं एक आध झापड़ दे दे तो दांत ही नहीं प्राण भी बाहर आजाएं, डेरे के सभी कार्य कर्त्ता उसका लोहा मानते थे, उसके विरुद्ध न कुछ कहते न करते, और अब तो उसका ही सर्वांगीन राज्य था, सब भीगी बिल्ली बने उसके आगे-आगे फिरते, गुनगुनासंत, जो नाक में बोलता था हलवाई का काम खूब जानता था, गुनगुना इसलिए कि आतशक का मराज था, सत्य स्वरूप जो काम तो खूब करता था, जवान था, सुन्दर भी लेकिन भिक्षा मांगने जाता तो लड़कियों को बहुत घूरता था, एक घर से ऐसी शिकायत भी सुनी गई थी, और डरे के कई एक निवासियों ने उसे एकांत में बैठ कर सी सी करते और आहें मारते भी सुना था और गुण गुणे को तो बाद में एक कुतिया से प्रेम करते हुए देखकर लोगों ने मार पीट गधे पर चढ़ा कर शहर से बाहर कर दिया था, इस

सद कार्य में गुरु जी के भाई चौरंगी लाल का ही सबसे बड़ा हाथ था, पर गुरु जी उस समय शायद कानपुर या अलाहबाद रहे होंगे, इसी तरह बाद में सत्यस्वरूप भी अपने पर काबू न रख सकने के कारण, एक लड़की को छेड़ बैठा था, वह भी निकाला गया, उस समय गुरु जी डेरे से बाहर थे, समभवतः वे जानबूझ कर ऐसे अवसरों पर डेरे ही नहीं शहर से बाहर ही रहते थे, यों वे जानते सब कुछ थे, जिस समय की यह बात है उस समय वे दोनों ही कायम थे और एक तीसरा था, स्वामी देशराज लंगड़ा लाठी के बल चलता, मजे से खाता पीता और स्वामी जी का वह C. I. D. था। हर अच्छी बुरी खबर स्वामी जी को बताता, यह तीनों ही मेवादास से डरते थे, पर डरती न थी तो श्याम कुमारी, बल्कि उसने तो मेवादास पर जैसे जादू कर दिया हो। वह उसके आगे पीछे भागा भागा फिरता, सुबह आती तो उसे लस्सी पिलाता, उसके लिए आटा छान देता, आग जला रखता उसकी दाल सब्जी के लिए शुद्ध घी का बघार लगा देता; श्याम-कुमारी पहले पहल तो चौंकी, पर फिर तो घी खिचड़ी हो गई, और मेवादास भी अपनी वर्षों की भूख प्यास मिटाने लगा। गुणगुणा, लंगड़ा और सत्यस्वरूप मिलकर खुसर फुसर करते, पर खुल कर कहने की किसी में हिम्मत न थी, और मेवादास सब केभेद भी जानता था, छलनी के एक-एकछेद को वह पहचानता था। इधर डेरे के बरतन, भाँड़े, कपड़े एक एक करके मेवादास के अनुग्रह से श्याम कुमरी के घर पहुंचने लगे, बर्तनों और वस्त्रों के ढेर में से एकाध चला भी जाए तो क्या फर्क पड़ता था, फिर भक्त नए दे भी जाते थे, जमा खर्च बराबर। श्याम कुमारी प्रसन्न थी तो हीरालाल भी कम खुश न था, परन्तु अब वह हीरा को हटाने कीचिन्ता में थी, एक दिन बोली—

तेली किया और रूखा खाया, पति और निखट्टू—कुछ काम धाम करो, तुम्हारा भी मान हो, हमें भी सुख मिले, कल को बच्चे हो जायेंगे तो उनके लिए भी कुछ न कुछ चाहिए, ऐसे कब तक काम चलेगा—

हालाँकि उसे इस बात में संदेह था कि हीरालाल उसे कोई पुत्र रत्न भेंट कर सकेगा, मेवादास पर तो उसे विश्वास था, डेरे में उन्हें अवसर भी मिलता था, परन्तु वह बात न थी जो घर के एकान्त में होती इसलिए श्यामकुमारी, रोजगार की तलाश के बहाने हीरालाल को नगर से बाहर भेजना चाहती थी।

श्याम कुमारी की बात हीरालाल को लग गई और उसे फगवाड़े की एक मिल में माल तुलाने और बोरों में भरवाकर बाहर भेजने की नौकरी मिल गई, इसमें मेवादास के गुराया के एक सेवक सुखासिंह का भी जोर लगा था, अतः नौकरी पर जाते हुए हीरा ने संत मेवादास को भी लाख लाख धन्यवाद दिए। हीरा हफ्ते भर काम करके शनिवार को संध्या को पैदल चल कर ही नूरपुर आ जाता, गई रात घर पहुंचता, कमाई के पैसे श्याम कुमारी के हाथ पर रखता, दिन चढ़े तक सोता रहता दोपहर तक श्याम कुमारी डेरे से रोटी बनाकर ले आती दोनों खाते और संध्या को वह फगवाड़े की ओर चल देता और श्याम कुमारी फिर डेरे की ओर बढ़ जाती। एक शनिवार की सम्मिलन रात्रि को श्याम कुमारी ने हर्ष समाचार सुनाया 'मुझे दूसरा महीना चढ रहा है, अब जरा मुस्तैदी से काम किया करो समय पर पैसे की जरूरत पड़ेगी।

हीरा उछल पड़ा, तुम चिन्ता न करो, स्वामी मेवादास की कृपा से मिल का अफसर जरूरी मेरी मजदूरी में तरक्की करा देगा—

वह भला क्या जानता था कि श्याम कुमारी जो तरक्की कर रही है उसमें भी मेवादास का ही सारा यत्न था।

मेवादास भी खुश था, नाम न हुआ तो न सही, सब किया धरा तो अपना है, अपनी औलाद को आखों तो देखा ही करूंगा, पर वह अवसर न आ सका।

स्वामी नाथू राम जी की कृपा से खूबसूरत लाल का लड़का रोग मुक्त हो गया, उन्होंने लड्डु बांटे, और दुगनी श्रद्धा से स्वामी जी के मुरीद हो गया। और जब उसने १०१) और लड्डूओं से भरे थालके साथ लड़के से माथा टिकवाया तो स्वामी जी निहाल हो गए और थानेदार साहिब का भक्तों की श्रेणीं में दर्जा बढ़ गया, अब वे साधारण नहीं सम्मानित शिष्य हो गए। चलते समय महाराज ने गुरु पूर्णिमा पर सपरिवार आने का साग्रह निमंत्रण भी दिया और अपना आशीर्वाद भी।

स्वामी जी डेरे में वापिस आए तो डेरे के वातावरण में परिवर्तन की गंध सूंघने लगे। संत मेवादास सब ज्ञान ध्यान छोड़ उन्हीं के आस पास मंडराने लगा, और देशराज लंगड़े को एकांत में स्वामी जी से बात करने का अवसर न मिला, मेवादास पर वह यह प्रगट न होने देना चाहता था कि गुरु महाराज की मुखबरी उसी ने की है, वर्ना और कुछ भी होता पर उसकी दूसरी टांग भी साबित न बचती। थोड़ा बहुत गुल गपाड़ा किया तो चौरंगी लाल ने। वह मुंह फट्ट अक्खड़ मिजाज और सब की पगड़ी उतारने वाला था, तगड़ा भी खूब था, मेवा दास भी उससे दबता था, मेवादास क्या स्वयं स्वामी जी अपने इस लक्ष्मण से भय खाते थे। स्वामीजी वापिस आए तो वह भी डेरे में आया।

मेवादास—श्याम कुमारी कांड की भनक उसके कानों में पड़ चुकी थी, सम्भव है यह गुरुगुणे की ही करामात थी, लेकिन एक तो उसकी पूरी बात समझ में न आती थी, दूसरे वह मेवादास से जलता भी था, इसलिए चौरंगीलाल को पूरा विश्वास न आया, मेवादास उनके डेरे द्वारा पोषित पुराना साथी भी था, श्याम कुमारी और कुछ न हो हीरालाल की पत्नी थी, हलवाई की मलाई सी मुलायम और शकरपारे सी खस्ता

मिस्री सी मीठी बातें भी कर लेती थी, सबसे बड़ी बात वह औरत थी. उसकी बदनामी का अर्थ डेरे की बदनामी। वह गायक जरूर था परन्तु संगीत उसके मुख और मस्तिष्क की चीज थी, हृदय की गहराई नहीं, उसके स्वभाव का सब रस संगीत ने ही-सोख लिया था, इस लिए श्याम कुमारी की मिठास और खस्ता मट्ठी सा सलोनापन तो असर न कर सका, डेरे की बदनामी का भय जरूर दबाए था, पर स्वामी जी को डेरे में देख कर उसका बांध टूट गया और आते ही वह बोला—

'यह डेरा है या छल्ला कोठी, अगर यही धंधे यहां होने हैं तो आप भी दो चार लुगाईयां ला बिठाइए —भिक्षा मांगने की जरूरत न रहेगी और कमाई भी खूब होगी—

स्वामी जी बेचारे भोले बाबा, उसे खींच के अंदर ले गए—मूर्ख आदमी धीरे से बात कर।

भीतर घंटों बात होती रहीं। स्वामी जी ने उसे विश्वास दिलाया कि गुरू पूर्णिमा निकल जाए अपना काम हो जाए उसके बाद दोनों को डेरे से निकाल देंगे। चौरंगी लाल ऐसा आदमी न था, वह तो एक दम आर या पार, यही चाहता था एकाएक उठकर वहां जाना चाहता था जहां श्याम कुमारी भोजन बना रही थी, परन्तु स्वामी जी ने रोक दिया, जैसे तैसे उसे ठंडा किया, खूबसूरत के यहां से जो मोतीचूर के लड्डू लाए थे, आठ दस उसके हाथ पर रखे। मोतीचूर गले से उतरा तो वह मोम हो गया और कल्याण के स्वर गले से निकालते हुए उसने घर की राह ली। उसे गया देखा तो मेवालाल जो छिपकली की तरह दीवार से लगा सब बातें सुन रहा था, शेर की तरह दहाड़ने लगा—

कौन साला, श्यामा को यहाँ से बाहिर निकालने वाला है और किस माई ने जना है जो मेवालाल पर लांछन लगाए और जीता बच के चला जाए। आपका भाई समझ में चुप रहा, नहीं तो।

अब स्वामी जी उसे ठंडा कर रहे थे, 'यह तो उजडड् मूर्ख है, जो मुंह आए बक देता है।'

'नहीं महाराज, आपने उसे यों ही सिर चढ़ा रखा है, साधु का चोला है हमारा भी, बदनाम हो के नहीं रह सकते, संभालिए अपना दंड कमंडल हम चले अपने गांव', बनावटी रोब दिखाते हुए मेवादास कह गया।

'हमने तो कुछ नहीं कहा भाई, देखो गुरु पूर्णिमा आ रही है, काम धाम के दिन हैं जिस तरह भी हो काटो, हमारा तुम्हारा पुराना साथ है, फिर जैसा जी में आए करना।

अभी यह बातें चल रही थीं कि कुठार से रोने की आवाज उठी, शायद श्यामकुमारी ही पहले सुबक सुबक कर बाद में जोर जोर से रोने लगी थी। आंसू तो चुप थे, बह रहे थे, परन्तु रोना चुप न था, वह कह रही थी—

"दिन भर भरो खपो, बैलों की तरह काम करो और इनाम में मिले यह बदनामी, मैं तो उस दिन को रोती हूँ जब मैंने अपना घर छोड़ इस शहर में पाँव रक्खा।" यह बैन सुने तो 'पास बैठी कहारिन ने कान खड़े किए', और स्वामी जी मेवादास को छोड़ कुठार की ओर भागे आए।

मेवादास लून मलाई हो रहा था, पर वक्त की नजाक़त देख चुप खड़ा था, और समय होता तो वह श्यामा के आँसू गंगाजल समझकर पी जाता, उनके चिन्हों को चाट चाट कर मिटा देता परन्तु वह विवश था। स्वामी जी उतना तो न कर सकते थे परन्तु उन्होंने श्यामा के आँसू पोंछ दिए-अपने लाल रंग के अगोछे से नहीं बल्कि धीरज दिलासे भरे शब्दों से और उसे १० लड्डू मोती चूर के और जाती बार दो रुपये हाथ पर रख दिए, आँसुओं के मोल यह लड्डू और रुपये मंहगे न थे, जबकि आँसू भी बनावटी थे, मगरमच्छ के से आँसू और वह घूँघट की ओट मुस्कराती दरवाजे में खड़े मेवादास से कंधा भिड़ाती और उसे आँख मारती हुई चल दी। संध्या के झुटपुटे में घूँघट की ओट छिपी आँख

की मार से तो वह बच गया पर कंधे की चोट ने उसके तन बदन में सिहरन पैदा कर दी, उसका जी चाहा, भाग के उसे पकड़ ले और क्या कुछ न कर डाले, पर डेरे में स्वामी जी मौजूद थे, वक्त की नज़ाकत कितना बड़ा अस्त्र है जिसका वार अचूक है, मेवादास के पाँव में जैसे बेड़ी लग गई पर दिल भीतर से निकली आह के साथ जैसे श्यामकुमारी के लहराते आँचल में ही उड़ उलझ कर रह गया।

स्वामी जी हैरान थे, पर उन्हें विश्वास न आता था कि उनकी अनुपस्थिति में यह सब कुछ हुआ होगा। गुणगुणे लंगड़े और सत्य-स्वरूप की रिपोर्ट भी उन्होंने सुनी पर अनसुनी कर दी, लेकिन डेरे के कोने-कोने को वे सूँघते फिर रहे थे। डेरे के लोटे गिलास, दरी लिहाफ़, झाड़ जूड़ी, रस्सी डोल, लैम्प से लेकर लड्डू बूँदी बर्फ़ी आटा दाल चावल शाक सब्जी घी दूध लस्सी कितना कहाँ से आया, कहाँ कितना रक्खा है, बिना बही खाते के भी उन्हें याद रहता था, उनकी ग़ैराहज़िरी में भी (भले ही महीनों बाहर रह आए) जो आए उसका जमा जोड़ भी उन्हें न भूलता था।

अब वे सब चीजों को देख रहे थे, चार छः गिलास नहीं, दो दरियाँ, छः गज क़मीज का कपड़ा, दो सेर शरिनी जो पासियों के घर से लड़की के विवाह पर आई थी, शुभ थी, पर उनकी हैरानी की हद न रही जब उन्होंने घी का वह मरतबान न पाया, जो वे छुपाकर रख गए थे, वह गाय का घी एक वृद्धा भक्तनी ने उनके लिए तोला-तोला जोड़कर रक्खा था और पिछली अमावस को दे गई थी, बड़ी श्रद्धा के साथ कि स्वामी जी ही इसे खायें, परन्तु वह क्या जानती थी कि उससे हीरा के घर के चिराग जलेंगे-परन्तु उस समय वह घी मर्तबान समेत बहुरूपिए डकौत के घर पड़ा था। बहुरूपिए, (यही उसका नाम था) को घी की जरुरत न थी, क्योंकि उसका काम प्रति-शनिवार को घर-घर से माँगे गए तेल ताम्बे से चल जाता था, उसे इस अमानत का मोह न था, तभी तो स्वामी जी के आने से एक दिन

पूर्व मेवादास घी का मर्त्तबान उसके घर रख गया था, जिससे कि आते जाते श्यामाकुमारी उसे छिपा कर ले जा सके, पर अब उसे बोझ न उठाना चाहिए, वह स्वयं किसी अमावस की अँधेरी रात को उसके यहाँ छोड़ आयेगा, हाँ इतना उसे ध्यान था कि वह शनि की रात न हो। मेवादास इसी चिन्ता में था कि स्वामी जी आ गए, अब स्वामी जी इसी घी के मर्त्तबान की चिन्ता में थे कि महमान आने शुरु हो गए। गुरु-पूर्णिमा में सप्ताह भी शेष न था, इसलिए घी के मर्त्तबान की चिन्ता को मन के किसी एक अँधेरे कोने में दबाने का जब कि वह मुश्किल से दबती थी और साथ ही साथ मेवादास और श्याम-कुमारी के सम्बंध की बात भी उभर आती थी यत्न करते हुए स्वामी जी मेहमानों की चिन्ता करने लगे।

सब से पहिले आने वालों में थे, दिल्ली के धर्म देव शर्मा, उनकी बीवी और बच्चे, धर्म देवयों तो स्वामी जी की छोटी बहिन का लड़का होता था, पर वह स्वामी जी का अनन्य भक्त था। रिश्ते-नाते को न मान कर वह स्वामी जी में शुद्ध गुरु भाव रखता था। बल्कि जो कोई इस रिश्ते की ओर इशारा करते हुए कुछ कहने भी लगे तो उसे रोक देता था और अपने मन में भी बड़ी ग्लानि सी अनु-भव करता था। लोग भले ही कहने से बाज न रहें, लो आगए खाने-पीने और मौज मारने, परन्तु वह यथा-शक्ति डेरे की सेवा करता आ रहा था और एक पाई का भी स्वामी जी से रवादार न था। बचपन में कभी एकाध बार स्वामी जी ने खर्चने खाने को दिया हो तो और बात है। बल्कि वह तो यहाँ तक कहर था कि कई बार यह जान कर कि स्वामी जी ने किसी आड़े समय में शायद लड़कियों के विवाह पर उसके पिता जी को चार साढ़े चार सौ रुपये की सहायता दी है, बहुत दुखी हुआ था, उसे तब तक चैन नहीं आया जब तक कि लगभग ५०० रुपये की इमारती लकड़ी जो घर में पड़ी थी वह स्वामी जी के डेरे में न भिजवादी और उसने अपने नाम शहर में जो दुकान

थी वह उसके पिता जी ने डेरे के नाम न कर दी। उसकी श्रद्धा भक्ति पर स्वामी जी बड़े प्रसन्न थे विशेषतया इसलिए भी कि वह स्वामी जी के हस्पताल के लिए ही नहीं डेरे के लिए भी प्रति मास अपनी बंधी थोड़ी आय में से जिस से उसकी भी कठिनाई से गुज़र बसर होती थी, दशमांश से अधिक भेजा करता था, और यह क्रम लगभग १३ वर्ष से चला आ रहा था। दिल्ली जैसे मंहगे शहर में रह कर इस तरह पेट काट कर सेवा करना आसान तो नहीं था, तो भी वह किए जा रहा था और साथ ही ऐसी सेवा करता था रघुबर नारायण। दोनों में खूब पटती भी थी और दोनों गुरु महाराज के थे अनन्य भक्त।

धर्मदेव आया तो स्वामी जी खिल उठे। उसके जिम्मे हस्पताल की वार्षिक रिपोर्ट छपवाने का काम था। गुरु पूर्णिमा के उत्सव पर ही हस्पताल की 'यह वार्षिक रिपोर्ट छपवा कर बांटी जाती थी। अब कि यह रिपोर्ट खूबसूरत लाल थानेदार ने जो शायद मैट्रिक पास भी न था, क्योंकि पुराना आदमी था, वर्षों सरकारी नौकरी की थी, स्वामी जी के विचार में पुराने मिडल पास भी आज के बी. ए. पासों से ज़यादह लायक हैं, और फिर थानेदार से नयी-नयी सुलह हुई थी, उसकी हर बात मान्य थी, डॉक्टर सीता बल्लभ स्वरूप ने, जो कि वास्तव में कम्पाउंडर थे और मैट्रिक से आगे न पढ़े थे पर अपने को किसी विलायत पास से कम न समझते थे, और विलायत जाने की सोचते भी रहते थे, मिल कर अँग्रेजी में तैयार की थी। इसका संशोधन किया था कृष्ण लाल सोहली ने, वह स्वामी जी का परम कृपा पात्र शिष्य था और हस्पताल कमेटी का मन्त्री भी, अमृतसर की कचहरी में उसने काफी जमाना धरती नापने में गुज़ारा था, वैसे तो वकील था, परन्तु जब कचहरी की वर्षों धूल फांकने पर भी धंधा न चला तो वहीं किसी की सिफ़ारिश से कचहरी का कलर्क लग गया था, नूरपर में वह आता तो वहाँ के निवासियों के कई काम चुटकी में हो जाते थे,

इस लिए लोग उससे डरते थे और उसे मानते थे, स्वामी जी भी उसे मानते थे, क्योंकि उसी के साले ने जो बहुत धनी और दानी व्यक्ति था स्वामी जी के नाम पर चलने वाले स्वामी नाथूराम फ्री औषधालय हस्पताल के लिए लिए १३००० रुपये दान भी दिया था, परन्तु यह बात सच है कि इतनी रक़म दान दिलाने में या खींच लाने में जिस मस्तिष्क का बल काम कर गया था वह तो कोई और ही था। और वही था मोहली का असली गुरु, स्वामी जी तो सैंकड हैंड थे, तो भी साले बहनोई में क्या फर्क इसी लिए न केवल मोहली ही दूसरे सभी शिष्य साथियों को जब चाहा आंखें दिखाने लगते बलिक मोहली का लड़का भी उन से पीछे न था। एक बार ताव खा कर कह गया था, यह मेरे मामा का हस्पताल है, यहाँ की जो चीज़ भी चाहूँ इस्तेमाल कर सकता हूँ, परन्तु वास्तव में जिस के मामा का हस्पताल था वही धर्म देव कुछ न कह सकता था कुछ न कहता था। और यही हस्पताल डेरे से उसे निकलवाने का कारण हुआ, बात विषयातंर हो गई पर कलम की नोक चल रही हो तो पकड़ना मुश्किल हो जाता है, हाँ तो इस हस्पताल की रिपोर्ट जिसे थानेदार, डॉक्टर और कलर्क ने तैयार किया था, धर्म देव के पास भेजी गई जिससे कि दिल्ली में उसे छपवा लिया जाए।

स्वामी जी खुश थे रिपोर्ट आ गई होगी, परन्तु धर्मदेव ने जब यह यह रिपोर्ट पढ़ी तो उसे पसंद न आई थी। उसने रघुवर नारायण से सलाह मश्वरा किया, उसे भी रिपोर्ट में जान दिखाई न दी। निश्चय यह हुआ कि रिपोर्ट कमेटी में पढ़ कर सुनाई जाए उसे वहीं शद्ध किया जाए तब उसे छपवा दिया जाए। इस लिए धर्म देव वैसे ही वापिस ले आया था। स्वामी जी ने जब यह सुना तो उदविग्न हो उठे।

'अरे भाई इसे छपवा क्यों न लाए—जो करना था वहीं ठीक ठाक कर लेते—

'आपकी आज्ञा सिर माथे पर, लेकिन महाराज जी रिपोर्ट जब तक कमेटी पास न कर दे कैसे छपवाई जा सकती है।'

तू तो मूर्ख है, और मूर्ख देव अपना सा मुंह ले के रह गया।

इतने में दूर नजदीक के सभी मुख्य भक्त-जन पधारने लगे, श्याम कुमारी का काम बढ़ता गया, मेवादास भी काम में उलझा रहता और उन्हें एक दूसरे के मन की कहने सुनने का अवसर न मिल पाता, हीरा भी छुट्टी लेकर आ गया था, वह डेरे के काम में व्यस्त रह कर भी श्यामा को देखने का मौका ढूंढ ही लेता, उसे देख जरा सा हंस भी देता, उसकी थकावट दूर हो जाती, श्यामा बनावटी नहीं सच्चे क्रोध को आंखों में भर कर घूर देती, हीरा उसे बनावटी समझ निहाल हो दुगने उत्साह से काम में लग जाता और श्यामा की आँखें आटा सानते, सबजी छौंकते किसी की झलक के लिए द्वार की ओर लपक-लपक के रह जातीं।

और अतिथि आ गए—दिल्ली से रघुवीर नारायण आये तो चित्रकार विजयचन्द भी आए, साथ भरतदास भंवरा भी थे, भंवरा कवि तो न थे, पर अपने नाम के आगे कुछ जोड़ना उन्हें खूब भाता था। रंग ढंग नाम के अनुरूप भवरे का सा ही था, बड़े भले मानस, मिठ बोले, बात-बात में खीसें निपोर लें, वे भंवरे थे तो घर वाली उनकी कली थी, रंग रूप तो कलियों का साथा। पर डील डौल परियों का सा न हो कर पहलवानों का सा था। खूब भारी भरकम, हंसमुख, पर अन्तर रुदन भरा था, कारण भी था, उनके एक लड़की थी, वह १३-१४ वर्ष की हो गई और भी बड़ी होती गई पर पुत्र न हो रहा था, और भी कोई संतान न होती थी। अँधेरी आए तो वर्षा की भी आशा हो सकती है, पर यहां तो एक बार अँधेरी आई और बस फिर तो हवा चलनी बंद हो गई, इस लिए तो उनके पति भंवरा जी अपनी सरकारी नौकरी की ऊपर की कमाई में से जो पाते थे उस में से प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा पर या जब कभी स्वामी जी उनके यहाँ पधारते तो

एक सबजा उनकी भेंट किया करते थे। कई सबजें स्वामी जी के हाथ चढ़ चुके थे, पर अभी तक बात बनती दिखाई न देती थी, काले का बोझ बढ़ता जाता था पर मद और पराग का नाम निशान नहीं।

विजयचन्द नामी चित्रकार थे, बल्कि साथ-साथ धन भी ख़ूब कमाया था परन्तु पहली बीबी दो पुत्र दे कर ईश्वर की प्यारी हो चुकी थी, वर्षों रंडुए रहे, अब कि गुरु जी के आशीर्वाद से विवाहे गए तो इसी खुशी में वे भी आए। पर वे बाकायदा आने वालों में से नहीं थे। हाँ गुरु जी उनके यहां बाक़ायदा जाया करते थे-साल में एक दो बार। उन तीनों के आते न आते मोहली और उनकी पत्नी जो अमृतसर में अपने मुहल्ले की प्रसिद्ध सतसंगिन और कीर्तन कला विशारद थी, वे भी आईं। साथ आया उनका पुत्र मुहब्बत पाल, उसे फिल्म में काम करने का बेहद शौक था। इसी लिए शक्ल सूरत ही नहीं अपना नाम भी ऐसा बना लिया था। इसी तरह बरेली से दोषी, कानपुर से अर्जुन दास मेहता, फ़ीरोजाबाद से कृष्णदास, काली चरण, हेम राज भी आए और सब से बाद में आए, टांगे में सब्जी ही नहीं अपनी दवाई की पोटली और पोटली के साथ ही साथ सब जगह साथ रहने वाली अपनी वैद्यनी जी को साथ लिए वैद्य शत्रुघन दास जी। इनके आते ही डेरे में हड़बड़ मच गई कोई कद्दू उठाने दौड़ा तो कोई पोटली को किसी ने आलू और आमों की टोकरी उठाया तो किसी ने वैद्यानी जी को ही उठाकर उतारना चाहा परन्तु ठिठक गया, यह तो पोटली नहीं, इतने में उनकी घर वाली के लिए गुरु जी स्वयं आगे आए। वैद्य जी, वैद्यानी जी आम, आलू, कद्दू पोटली सब के लिए डेरे में एक अलग कमरा रिजर्व रहता था, उसी में पहुँचाए गए।

वैद्य जी गुरु जी के भक्तों में सर्वाग्रगण्य थे, और इन्हें ही गुरु जी के पूजन और सेवा का सच्चा अधिकार प्राप्त था। वैद्य जी पुराने रईस हैं, रईसी अब पांच-छः जगह बंट चुकी थी फिर भी ठाठ वैसे ही रस्सी जल गई वाली बात, खा के कमाने की चिन्ता नहीं, एकाध मरीज

भी मिल जाए तो साल भर के लिए काफी, छोटे-मोटे की नाड़ी पर हाथ नहीं रखते। गुरु जी कहते हैं कि वैद्य जी में वह करामात है कि मुर्दे भी जी जाएँ, और वैद्य जी कहते हैं यह करामात गुरु जी के आशीर्वाद में है मेरी दवाई तो साधन मात्र है, अब सच क्या है यह तो जिन खोजया तिन पाइयाँ। तबीयत के वैद्य जी बड़े बेपरवाह हैं, भगवान् का भजन करने में खूब मन लगाते थे। संतान उनके हुई नहीं, इसकी परवाह नहीं, क्योंकि तब तीर्थ यात्रा में विघ्न बाधा आती। वर्ना कौन जाए और जाए तो बच्चों कच्चों को कौन साथ-साथ लिए फिरे' वे तो दवाई की पोटली और वैद्यानी जी से ही तंग हैं, अब तो खैर वे अजागल स्तन की तरह बेकार है जब ऐसी न थीं तब भी वैद्य जी उनमें अधिक रस न लेते थे, सुरा और सुंदरियों का अपने जमाने में काफी साथ निभा चुके हैं अब वे कई वर्षों से सूफी हैं, वैरागी हैं, पर वैधानी न तब उनका संग छोड़ती थी न अब छोड़ती है। कारण चाहे कुछ भी हो वैद्यानी को संतान की इच्छा और आशा ने ही जीवित रक्खा, वे तो इसीलिए गुरु महाराज की ओर झुकती रहीं, पर संतान के अभाव में संतान के लालन पालन की चाह अपने शरीर की देख रेख और सार-संभार में पूरी करती रहीं, चुनाचि डेरे में आकर भी जितना समय सबजी बनाने उसे चढाने पकाने, आटा सानने, झाड़ू बुहारु करने आगत अतिथियों को भोजन कराने में खर्च करती उससे अधिक उबटन लगाने, नहाने, बाल बनाने में लगातीं। पाँच-पाँच किस्म की क्रीमें उनके पास सदा पाई जाती थीं। आते ही डेरे के चौके चूल्हे रोटी पकाने और गुसलखाने पर उनका ही पहरा शुरु हो जाता था। रह गए खूबसूरतलाल से उन्हें बहुत तंग वक्त से छुट्टी की मंजूरी मिली, दूसरे दिन वे भी आ गए।

गुरु पूर्णिमा जिस दिन प्रातः काल थी उससे पहली रात को मीटिंग बुलाई गई। नूरपुर निवासियों में चौरंगीलाल कृष्ण प्रसाद, शंकरनाथ, न्यायदत्त, भैरवप्रसाद, आदि ११ सदस्य उपस्थित थे, शेष सभी बाहिर के थे। संध्या की गाड़ी से रघुवरनारायण और विष्णुचन्द्र गुप्ता भी

आ गए । भोजनोपरांत बैठक शुरु हुई । गुरु महाराज अलग एक आसन पर विराज रहे थे और उनके सामने ही अर्ध चंद्राकार रूप में सदस्य-गण बैठे थे मंत्री मोहला जी एक छोटी तिपाई पर लैम्प रखे एक ओर अकड़कर बैठे थे । कार्यवाही महाराज से आज्ञा लेकर शुरु हुई ।

मन्त्री ने पहला प्रस्ताव रक्खा ।

नृसिंह शर्मा नें महाराज जी के हस्पताल के चंदे का हिसाब किताब नहीं दिया, महाराज के भक्त जनों से हस्पताल के लिए चंदा मांगकर सबका सब हजम कर गए, कम नहीं कोई ८०, ९०, हजार एक लाख ही समझिए हड़प कर गए । यह कमेटी पास करती है कि आज से उन्हें कमेटी की मेम्बरी से बरखास्त किया जाए और उनके खिलाफ कानूनी कार्यवाही की जाए ।

"जरूर की जाए विष्णुचन्द गुप्त बोल उठे ।"

उस साले हरामजादे को मेरे सुपुर्द कर दो मार-मार जूते भेजा ढीला कर दूँगा ।

चौरंगीलाल की आवाज आई ।

''जरा समझदारी से बात किया करो, चौरंगी,

स्वामी जी ने उसे चुप कराते हुए कहा, "आप तो हमारा मुंह बंद करेंगे, इसी का यह फल है न, पहले ही संभल गए होते तो वह मादर''' इतना रुपया हजम न कर लेता हमें क्या, भाड़ में जाय सब कुछ ।'

चौरंगीलाल धड़-धड़ करता सीढ़ियां उतर गया, किन्तु कृष्णचंद उसे मना कर ऊपर बुला लानें की इच्छा से उठा तो स्वामी जी ने मना कर दिया, कार्यवाही चल पड़ी ।

'तो क्या राय है आपकी, मंत्री जी बोलो ।

जेल भिजवादो मंत्री जी आप तो कचहरी के मालिक है, शंकरनाथ की आवाज आई 'अरे तुम इन्हें क्यों भूल रहे हो 'भैरवदत्त बोला, थाने-दार खूबसूरतलाल को, पेन्शन पाली तो क्या बड़े-बड़े अफसर इनसे डरते हैं, बड़े-बड़े डाकुओं को पानी पिला-पिलाकर इन्होंने मारा है ।

कचहरी की बात और है भाई भैरों थाना-थाना है, कचहरी में क्या रक्खा है और दोनों लगे उलझने, लगे इतने में मंत्री जी ने स्वामी जी की ओर देखा।

तो क्या आज्ञा है महाराज जी,

मोहली जी हम उसके खिलाफ कानूनी कार्यवाही नहीं कर सकते। सबसे ज्यादह तो उसने अर्जुनदास को ही हमारे नाम पर ठगा है, ४०–४५ हजार रुपया बेचारे ने दिया, अब अगर सरकार उससे पूछ बैठे, कि यह रकम कहां से पाई, तनख्वाह तो तुम्हारी ४००) रुपया ही है तो क्या बताएगा वह, ऊपर की कमाई बेशक ठीक है, पर कानून की दृष्टि में तो वह जुर्म है बस बेचारा यों ही मारा जाएगा।

'तो जाने दीजिए कानूनी कार्यवाही की बात, बस आगे को वह न तो हमारा मेम्बर रहे और आप उसे डेरे में न आने दें।

'बस यही ठीक है, हम नहीं उसे आने देंगे, पर लड़का कितना योग्य था, सांप के मुंह से कौड़ी छीन लाने वाला, अगर वह नेक नियती से काम करता रहता तो हमारा हस्पताल चल गया होता।'

और हस्पताल की चिन्ता में स्वामी जी ने गहरी सांस भरी, मंत्री जी दूसरा प्रस्ताव रखने वाले थे कि स्वामी जी ने रोक दिया, कुछ क्षण वे चिन्ता में मग्न रहे और इन्हीं कुछ क्षणों में नृसिंह शर्मा की सारी विचित्र लीला उनके दिमाग में एक बार घूम गई।

देवी भागवत पुराण में एक कथा आती है। एक बार नारद जी नदी में स्नान करने उतरे। अञ्जलि में जल लिया तो किनारे पर बैठे नारायण की माया से अंज्जलि के जल में ही नारद जी ने अपने अनेक जन्मों की लीला देखी औरत का जन्म भी धारण किया, बच्चे भी पैदा किए, हजारों वर्ष जिए, भयभीत हो गए अञ्जलि का जल फेंक दिया, भगवान मुस्करा रहे थे, बस इसी तरह क्षण दो क्षण में स्वामी जी की कल्पना में पुराने चित्र सजीव हो उठे, चित्र बहुत पुराने भी न थे, जख्म अभी हरे ही थे, जब याद आती थी तड़प उठते थे और ८० हजार

रुपये का गम अन्दर गिर रहे नजले को तरह दिल में घुटन सी पैदा करता रहता था।

५

नृसिंह शर्मा जब तक उनके जीवन में एक क्रूर ग्रह की तरह न आया था, तब तक वे सुखी थे, चैन की बजती थी परन्तु उसने आते ही महाराज के बीसियों शिष्य बना दिए, शिष्य भी ऐसे जो एक-एक अकेला बीस-बीस हजार दे सकता था, फिर नाम और मान भी कितना था, बड़े-बड़े एंजीनीयर और सुपरिडेंट चरणों में लोटने लगें, चरणामृत पान करें, तो किसे सवाद नहीं आता, इसका मोह छोड़ना कठिन ही तो था, यही नहीं नृसिंह शर्मा खुद भी दस-दस बीस-बीस मिनट तक ही नहीं कभी-कभी घंटों चरण पकड़े लेटा रहता, बदन उसका भैंसे सा मोटा था, पेट के बल लेटता तो शरीर का सारा बोझ पेट पर पड़जाता, आगे जोर डाल देता तो टांगे और पीछे जोर डालता तो नाक उठ जाती, नाक जमीन पर गिरती तो टांगे ऊँची उठ जाती, नाक ऊँची उठती तो टांगे जमीन पर आ रहती।

वह चंवर भी डुलाता, बी० ए० पास पढ़ा लिखा नृसिंह शर्मा जब इस तरह की भाव भक्ति दिखाता तो स्वामी जी सिहर उठते, उसी ने नगर के बाहर जमीन का एक प्लाट खरीदने की सलाह दी थी, वह खरीदा भी गया, तब उस पर हस्पताल बनाने की सम्मति भी उसी ने दी, करते न करते हस्पताल खड़ा हो गया था, एक कोठी भी उसी जमीन में बन गई थी, हस्पताल की इमारत के लिए १२०००) रुपया भी मोहली के साले सेठ चन्दनलाल से वहीं लाया था, उस समय कृष्णलाल

मोह्लो, नृसिंह शर्मा के सेवक थे, स्वामी जी के न बन सके थे। उसका जादू स्वामी जी पर खूब काम कर रहा था, उसने गुरु महाराज से भक्तों के प्रति यह कहलवा लिया था कि सब भक्त जन नृसिंह जी को उन्हीं के स्थान पर मानें और उन्हीं का रूप समझें। इतना हो गया तो नृसिंह जी ने पर पुर्जे निकालने शुरू किए। डेरे में ही पड़ा रहता, रात-रात भर उसकी मजलिस लगी रहती, दिन को बारह बजे तक पड़ा सोता रहता, कुम्भकरण की तरह उठते ही शिगार का धूआ छोड़ता, फिर नहाता धोता, खा-पीकर आराम करता, स्वामी जी दिल में कुढ़ते पर कह कुछ न सकते, डेरे के सब कर्मचारी उसके बेदाम के गुलाम हो रहे थे, स्वामी जी की बात भले ही टाल दे पर नृसिंह शर्मा जी की बात टाली जाए तो स्वामी जी और शर्मा जी दोनों की नाराजगी सहन करनी पड़ती और उसने अपनी एक सत बचनियों की अलग पार्टी भी बना ली थी जो उसके आगे पीछे सत्य वचन कहती फिरती। डेरे के बाहिर भी ऐसे कई काम होने लगे जिसकी स्वामी जी को कानों-कान खबर न लगती। शर्मा जी में किसी दिन भैरों का आवेश होता तो किसी दिन सनीचर और मंगल का, अच्छे मूड़ में होते तो स्वर्ग से बड़े गुरु महाराज उनमें आ विराजते। तब वह भूत भविस्चत की सब बातें बताने लगते।

एक बार नृसिंह शर्मा जी ने मोह्लो के घर स्वामी जी को विष्णु भगवान बना कर बिठा दिया, अलग एक ऊँचे सिंहान पर, वह स्वयं बैठकर कुछ योग विद्या सी में मग्न होगया, तब ऊँचे बोलने लगा, सब डर गए, हाथ जोड़े खड़े थे, आज्ञा मिले और उसी क्षण कार्य पूरा हो तब एक दम शर्मा उछल पड़ा,—मैं विष्णु का गरुड़ हूँ—जाओ अपनी पत्नी को भेजो, वह नागिन है, मैं उसे खाऊंगा।

'न महाराज मेरी एक ही तो पत्नी है मैंने क्या गुनाह किया ?

मोल्हू का बच्चा, बातें करता है, जल्दी उसे भेज हमारी चोंच के स्पर्श से वह मरेगी नहीं अमर हो जाएगी।

मोल्हू तो जैसे खुशी में पागल हो गया, अपनी पत्नी को बुलाने ही

चला था कि कीर्तन कलाविधि श्रीमती मोहली स्वयं चली आ रही थी, शायद उसने गरुड़ भगवान् की आवाज सुन ली थी। भयभीत सी हाथ जोड़कर बोली, आज्ञा गुरु देव!

गरुड़ भगवान जोर से बोले—नागिन, तू हमारा भक्ष्य है, पर विष्णु जी की भक्त होने से हम तुम्हें छोड़ देंगे, इसलिए डर मत संशय संदेह छोड़ हमारे पार्श्व में खड़ी हो जाओ, अपनी चोंच स्पर्श से हम तुम्हें अभयदान देंगे, दुःख मुक्त हो जाओगी।

और झट श्रीमती मोहली गरुड़ की बगल में खड़ी हो गई और गरुड़ ने जोर से उसका मुंह चूम लिया।

विष्णु भगवान ने मुंह दूसरी ओर फेर लिया, उन्हें ग्लानि तो हुई, पर जिसने विष्णु बनाकर स्थापना की थी उसके विरुद्ध क्या कह सकते थे और गरुड़जी बोल उठे।

जाओ मोहलू विष्णु जी की सेवा में १०१ भेंट रखो, और गरुड़ के लिए रेश्मी वस्त्र लाओ, बहुत सस्ते में तुम्हें छोड़ देते हैं, तुम्हारी पत्नी अमर हो गई कभी बूढ़ी न होगी, गरुड़ की चोंच के स्पर्श में अमृत का आवास है।

मोहली की सारी वकालत और कचहरीनृसिंह शर्मा के दर्बार में कुछ काम न देती, वह तो भीगी बिल्ली बना रहता, नृसिंह यदि जूते साफ करने को कहता तो वह भी करता, इसी तरह एक दिन लखपति ठेकेदार निहालदास के घर में भैरों का आवेश हुआ था, भैरों ने दीवार में लगी खूंटी को तोड़ दिया, और जोर से चिल्लाया। निहालदास हाथ जोड़ कांपता हुआ बोला।

आज्ञा महाराज, आज्ञा महाराज आप कौन हैं?

"भैरों—मेरी बलि लाओ।

और बलि आगई, बकरे का गोश्त और सुरा की भरी सुराही।

'मोहलू। वह वहीं मौजूद जो था, भैरों का पुजारी, 'सुराही में से थोड़ा जल निकाल कर मेरे शरीर पर छींटा दो और बलि का यह बकरा

और गंगा जल मेरे स्थान पर चढा आओ, किसी को भेज दो, खुद यहीं ठहरो, मोहली ने भैरों की आज्ञा अक्षरश पूरी की। भैरों झूमने लगा, बन्द आँखें खोली तो एकत्रित स्त्रियों में ठेकेदार निहालदास की अति रूपवान और जवान लड़की उन्हें दिखाई दी। आँखें बन्द कर ली सिर हिलाने लगे 'आज भैरों जल रहा है। 'इस कपटी दुनियाँ का व्यवहार देखकर भैरों चाहता है सर्वनाश हो।'

"शांत हो भैरों देवता, हम सब पर कृपा की दृष्टि हो जाए," मोहली ने कहा।

हमारी छाती जल रही है, बदन आग हो रहा है।

'कुछ पीजीएगा महाराज, बर्फ मंगाऊँ—

मूर्ख देवता संसार के पदार्थों से प्रसन्न नहीं होते—उसे बुलाओ।

इशारा लड़की की ओर था, और मोहली ने झट सरला को पकड़ कर आगे कर दिया, भैरों ने उसे जोर से छाती से चिपटा लिया, और बेहोश होकर गिर पड़ा, सरला को मोहली ने अलग हटा लिया।

भैरों चले गए तो नृसिंह शर्मा ने आंखें खोलीं, उस समय वह ऐसा कमजोर और पिटा सा दिखाई देता था कि सब भाग कर जाते उसकी ओर करुणा भरी दृष्टि से देखते हुए उसके पांव दबाते, सिर पर मालिश करते, गर्म-गर्म दूध ले आते कहा जाता है कि देवता जब शरीर में से निकल जाता है तो शरीरधारी बड़ा कमजोर हो जाता है।

भैरों आया और चला गया, निहालदास, नृसिंह शर्मा के द्वारा स्वामी नाथू राम जी के शिष्य हुए, सरला, भैरों की चेली बनी और वह उसे लेकर कई बार नूरपुर भी आया था। माता पिता को विश्वास था, जिस तन में भैरों और गरुड़ आके रह जाएँ वह शरीर पवित्र ही होना है, पर जाने मन की बात वे कैसे भूल जाते थे।

और इसी शर्मा के कारण कानपुर के अर्जुन दास भी महाराज के शिष्य हुए थे। महाराज के पल्ले तो छाछ ही पड़ती थी, वे उसी में

खुश थे और शिष्य चने का यथार्थ मक्खन और मलाई तो शर्मा के हिस्से ही पड़ती थी।

नृसिंह शर्मा उर्दू में शेर भी कहता था, और हाथ की रेखाएँ भी पढ़ लेता था और जादू टोना भी कर लेता था। हाथ की रेखाओं और मंत्र टोनें का असली बल थे, वे भोले और नौजवान छोकरे जो अपनी मूर्खता के कारण या शर्मा के पैसों के बल पर उसे सब खैर-खबर पहुँचाया करते थे, उसका दूसरा अस्त्र था पति से उसके रहस्य जानकर पत्नी को ठगना, पत्नी की बातें जानकर पति को बता देने के भय से उसे सब तरह लूट लेना, न बताए तो उसके बच्चे को शाप देकर बीमार कर देने या मार डालने का भय दिखाना। बेचारी भोली स्त्रियाँ और २४ घंटे दफ्तरों में झक मार कर आने वाले दफ्तरों के बाबू और अफसर इस नाटक के भेद को कहाँ तक जान पाते। इन्हीं अस्त्रों का प्रयोग शर्मा ने अर्जुनदास पर किया था। लड़ाई का जमाना अर्जुनदास की ऊपर की आमदनी का क्या ठिकाना ठेकेदारों के वारे-न्यारे हो रहे थे और अफसरों की चाँदी थी और अर्जुनदास की पत्नी कौशल्या बड़ी जवान और बेहद खूबसूरत थी। अर्जुनदास मधुमेह के रोगी, बस शर्मा को हाथ ठगने का अवसर मिल गया। अर्जुनदास का तो वह भाई ही बन गया, और स्वामी जी तो भगवान् थे ही, एक क्षण में उसका रोग दूर कर देंगे।

धीरे-धीरे शर्मा, अर्जुदास का गुरु और इष्ट बन गया। शर्मा दस हजार मांगता तो वह १५ पेश करता इस पर भी शर्मा उसे ऐसा तँग करता कि वह रो उठता लेकिन विरोध न कर सकता।

'अर्जुन के बच्चे, मेरे पाँव दबाओ, और अर्जुन साहिब जिनके आगे पीछे शहद की मक्खियों की तरह नौकर फिरा करते थे, शर्मा के पांव दबाने लगते।

'अच्छा जाओ', फिर हुक्म होता, 'कौशल्या को भेज दो, और तुम

बत्री के साथ जाकर सिनेमा देख आओ, और देखो फिलम बड़ी बहिन देखना, उसके गाने मेरे लिखे हुए हैं।'

और अर्जुनदास चल देते, भले ही दिल न चाहता हो, घर में आराम करने की तबीयत हो, पर अपने गुरु की आज्ञा टाल सकें यह मुमकिन न था, वे तो काम पर जाते समय भी नृसिंह शर्मा से आज्ञा लेते थे, वह न कह दे तो हजार काम होने पर भी छुट्टी ले लेते, हाँ तो अर्जुन दास चले गए छोटी या बड़ी बहिन देखने और शर्मा ने बुलाया कौशल्या आ गई 'खड़ी रह, बस यहीं खड़ी रह बेचारी खड़ी हो गई, खड़े-खड़े थक गई तो बैठने लगी।

'मैं कहता हूँ जब तक मैं न कहूं बैठना नहीं,

नहीं बैठूँगी, पर अब तो थक गई हूँ।

थकाना ही तो है, उस दिन बुलाया था तो भाग क्यों गई थीं।

'पिता जी आए हुए थे, उन्हें उसी संध्या को वापिस भी चले जाना था।

'हमारी आज्ञा बड़ी है या पिता की,

आप की।

'जी में तो आया तेरे पुत्र को भस्म कर दूँ पर....

'न महाराज ऐसा क्रोध न कीजिए ऐसा अपराध फिर न होगा ? कौशल्या हाथ बांधे रोने लगी 'नारी की आंख के आंसू तो बड़े-बड़े पत्थरों को भी पिघला दें और शर्मा का यह क्रोध तो बनावटी ही था।

'अच्छा आओ, इधर बैठो, हमारे साथ चार पाई पर।

'आपके बराबर कैसे बैठ सकती हूँ।

'हम जो कहते हैं, और आंसू की जगह आंखों में और चेहरे पर मुस्कान फैला दी।

जो आज्ञा।

परन्तु आंखों में बेबसी और चेहरे पर मुस्कान लाकर कौशल्या, भैंसे से, भद्दे काले कलूटे शर्मा के साथ सट कर बैठ जाती, पहलूए हर

में लंगूर खुदा की कुदरत को कौन रोक सकता है और सुनते हैं इसी लंगूर के दो पुत्र इस हूर से हुए। अर्जुनदास इसे गुरु जी का प्रसाद ही समझता था।

स्वामी जी बड़े गर्व से कहा करते थे।

शर्मा जैसी उर्दू की शायरी कोई क्या करेगा उसकी असली रचना का भी ज्ञान उन्हें था या नहीं सो तो वे ही जानें।

स्वामी जी यह सब कुछ बर्दाश्त करते रहे परन्तु उन्हें वास्तव में दुःख तब हुआ जब शर्मा ने अर्जुनदास, मोहनी, निहालदास और ऐसी सब बड़ी आसामियों को अटेर लिया बल्कि इन सब राम गौओं को इतना दुहा कि दूध ही नहीं उनका खून भी सूख गया और अब वह उन्हें ही नहीं स्वामी जी को भी आंखें दिखाने लगा स्वामी जी क्रोध में आ कभी कानपुर कलकत्ता तो कभी लखनऊ, मुरादाबाद और देहली सब जगह फिरे, सबसे पूछताछ की और तब उन्हें यह जान कर अपार दुःख और क्षोभ हुआ कि शर्मा लगभग एक लाख रुपया हड़प करने के साथ ही-साथ एक दर्जन से अधिक लड़कियाँ भी खराब कर गया और यह सब हुआ स्वामी जी की ओट लेकर कभी उनके सामने भी और उनकी पीठ पीछे उनकी छत्र छाया में भी। माया मिली न राम, पैसे के लोभ में भले ही वह परोपकार के लिए था, नैतिकता और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिला और पैसा फिर भी हाथ न लगा, स्वामी जी के मन में पश्चाताप और ग्लानि आंधी बवंडर सी उठ रही थी, वे चाहते थे, यदि कहीं मिल जाए तो नृसिंह का गला घोंट दें फिर चाहे फांसी के तख्ते पर ही झूलना पड़े परन्तु वे कुछ न कर सके, चौरंगीलाल को लेकर अपनी ननिहाल गए, क्योंकि वहीं का वह रहने वाला ही न था बल्कि स्वामी जी को मामूजाद भाई का लड़का भी था। चौरंगीलाल का उन्हें बड़ा भरोसा था, परन्तु नृसिंह तो अपनी मांद में शेर बना बैठा था, एक अधन्ना भी देने को न था, सिवाय चार छः गालियाँ बकने के चौरंगीलाल भी उसका कुछ न बिगाड़ सका, और स्वामी जी अपना सा

मुंह लेकर वापिस नूरपुर आ गए थे जब कि शर्मा ने एक तीसरी शादी रचा ली थी और अब वह विदेश जाने की सोच रहा था।

स्वामी जी ने अपने वकील भक्तों विशेषतः मोहली से सलाह मश्वरा किया, खूबसूरतलाल जो उनके प्रधान शिष्यों में था, उसका सहारा भी लिया परन्तु शर्मा के खिलाफ कानूनी कार्यवाही भी कैसे करते उसमें तो सभी के बांधे जाने का भय था और फिर ऐसी बातें भी खुल जातीं जिसमें वे और उनका डेरा भी बदनाम होता था, नृसिंह शर्मा सब भेद जानता था, इस लिए सब मन मार के चुप ही रहे स्वामी जी भी गम खा गए। अब दुःख और चिन्ता की बात यह थी कि नृसिंह शर्मा खुद तो माल मार कर ले गए मौज भी उड़ाते रहे पर जाते हुए यह हस्पताल का ग्रह उनके गले में डाल गए न चलाएं तो बदनामी हो और शर्मा की भी चढ़ जाए क्यों चला लिया हस्पताल यह हमारे बस से ही था, और चलाएँ तो कैसे ? नूरपुर के लोग हस्पताल का सारा अधिकार तो अपने हाथ रखना चाहते थे क्योंकि देख-रेख सब काम धाम उन्हीं को करना पड़ता था, परन्तु हस्पताल के लिए चंदा या सहायता मिलती थी बाहिर के भक्तों से, उन्हें भी कुछ अधिक मिलना चाहिए।

दोनों पक्षों में रस्सा कशी होती रहती थी, और उधर हस्पताल के वैद्य बद्रीनाथ चुपचाप अपना उल्लू सीधा करते रहते थे, दवाईयां बनती हस्पताल के लिए, हस्पताल के खर्च से और उन्हें वैद्य जी अपने निजी ग्राहकों को सस्ते दामों बेचकर पैसे खड़े कर लेते, हस्पताल डूबने लगा और वैद्य जी उभरने लगे। वे उसी रोगी को अच्छी तरह देखते या अच्छी दवाई देते जो उनकी सेवा करता, नहीं तो यों ही टाल देते —फिर निर्धन रोगी आएं तो क्यों ? एक बार एक वृद्ध स्त्री आई, उसके दांत खराब थे दर्द हो रहा था आजिजी से बोली, वैद्य जी, ऐसी दवाई दे दो जिससे मेरी पीड़ा शांत हो जाए।

'एक बोतल सिरके की लाओ तो दवाई बना देंगे, वैद्य जी बोले—

अब सिरके की बोतल खरीदने का उसमें दम हो तो दवाई न मोल ले लें—बस यही बातें थीं जो स्वामी जी को चिन्तित किए थीं—

चिन्ता और कल्पना की यह कड़ी टूटी तो स्वामी जी जैसे सोए से जगे—वर्षों की घटनाएं क्षणों में पुनरावृत्ति कर गईं। स्वामी जी साव-धान हुए तो मंत्री जी ने रिपोर्ट पढ़नी शुरु की।

रघुवर नारायण और धर्मदेव ने आपत्ति की, रिपोर्ट की भाषा अच्छी नहीं, इसे दुबारा लिखवाया जाए।

डाक्टर साहिब तिलमिला उठे, मंत्री जी जल गए और थानेदार साहिब मूछों के सिरे को जोर जोर से मरोड़ रहे थे।

सब से पहले थानेदार जी ही बोले भाई मैं ज्यादह पढ़ा लिखा तो नहीं, और न हमें अंग्रेजी लिखने का ज्यादा काम पड़ता है, पर यह रिपोर्ट तो अच्छी खासी लिखी गई है।

विष्णु चंद गुप्ता एम० ए० पास था, सीधा साधारण सा आदमी, परन्तु उसने कह ही दिया।

हां मंत्री जी रिपोर्ट जैसी चाहिए वैसी बनी रही, दुबारा लिखवाई जाए किसी पढ़े लिखे अनुभवी आदमी से तो चार चांद लग जाएं।

'चार नहीं आठ चांद लगाओ गुप्ता जी, हमें क्या, हम तो लिखते लिखाते सेवा करते मर गए और यह कल का छोकरा कह रहा है रिपोर्ट की भाषा ठीक नहीं।" उनका इशारा धर्मदेव की ओर था।' इतने में स्वामी जी बोल उठे।

"जैसी बात मोहली साहिब कहते हैं वैसा ही कर लीजिए—मतलब तो काम से है।"

'रिपोर्ट तो महाराज ठीक ही छपनी चाहिए। चीज अच्छी मुंह बोलती हो तो पढ़ने वाला प्रभावित होगा, तभी न हस्पताल के लिए कुछ देने को उसका मन चाहेगा। धर्मदेव ने धीरता से कहा—यह बात सब के मन लगी और निश्चय यह हुआ कि रिपोर्ट को तीन आदमी प्रो० बादलसिंह जिन्हें विशेषतया इस अवसर पर स्वामी जी ने बुलाया

था, बाबू रघुवर नारायण बी० ए० और विष्णु चंद गुप्ता दुबारा पढ़ें और संशोधन करें, परन्तु मंत्री मोहली जी ताव में आ गए।

महाराज यह केवल आपके लिए ही और आपके कारण ही इतना मरते खपते हैं और इनाम यह मिलता है कि कल के छोकरे हमारा अपमान करते हैं। और यह भी क्या जरूरी है कि एक ही आदमी सब बोझा उठाए। अब यह मंत्री का पद किसी और को दे दिया जाए।

धर्मदेव गुरु जी भक्तों में अपने को किसी से कम न समझता था, कहने लगा—

'हम सब अपने लिए, अपने शौक और उत्साह से काम करते हैं महाराज जी पर कोई एहसान नहीं—'महाराज जी का कोई अपना स्वार्थ नहीं हम यहां अपने स्वार्थ साधन के लिए ही आते हैं, किसी पर कोई एहसान नहीं।

'चुप रहो धर्मदेव, तुम न खुद कुछ करते हो न औरों को करने देते हो, व्यर्थ की उलझन खड़ी कर देते हो, उठो यहां से, जाओ सो रहो जाकर ? गुरु जी कड़क कर बोले।

और लोग तो मोहली जी की अनुनलय विनय करने लगे और धर्मदेव कटा सा रह गया, आँखों में आंसू भरे वहां से हट गया, और मोहली कह रहा था, महाराज जी आपकी खातिर ही हम सब इतना अपमान सहन कर जाते हैं। धर्मदेव ने जाते-जाते सुन लिया वह सोच रहा था, स्वामी जी के सम्बन्धी होने के कारण ही हर कोई हमें दबा लेता है खुद स्वामी जी भी, वर्ना ऐसे आदमी को कोई बोलने तक न दे।

रघुवर नारायण ने मोहली से रिपोर्ट के कागजात मांगे कि बैठकर अभी उसे देख लिता जाए, पर उन्होंने साफ इन्कार कर दिया, सभी सदस्य उठने वाले थे कि स्वामी जी ने सबको बुलाकर बिठाकर हस्पताल और वैद्य जी की बात उठाई। निश्चय यह हुआ कि वैद्य बदल दिया जाए। स्वामी जी ने नए वैद्य के लिए धर्मदेव के पिता पं० वसंत राज शास्त्री का नाम लिया, वेवयोवृद्ध विद्वान और अनुभवी वैद्य है।

इलाके भर में और दूर दूर तक उनका नाम है, निःशुल्क काम करेंगे, इस तरह खर्च बच जाएगा, यदा कदा कथा उपदेश भी कर दिया करेंगे, अपना काम चल निकलेगा।

यह सुझाव सबने एक मत स्वीकार किया। तब स्वामी आत्म प्रकाश ने सब को दूध पिलाया और सब सो गए परन्तु स्वामी जी जग रहे थे—उन्हें गुरु पूजा के लिए तैयार होना था।

दूसरे दिन प्रातः काल से ही नहा धोकर स्वामी जी अपने आसन पर बैठ गए, सर्वप्रथम वैद्य शत्रुघनदास और वैद्यानी जी, फिर मोहली और श्रीमती मोहली, विष्णु चंद गुप्त, रघुवर नारायण तथा और सभी ने बारी बारी गुरु जी का पूजन किया, धूप दीप, अगर चंदन, पुष्पादि चढ़ा गए, चरणामृत लिया गया, आरती उतारी गई और तब यथा शक्ति दो, चार, पांच, दस, बीस, सौ, के नोट तक भेंट किए गए। बाहिर से जो न आ सके थे, उन्होंने मनीआर्डर भेजे, दोपहर तक यही सिलसिला जारी रहा। हीरा, भवानी, चौरंगीलाल भी आकर पूजन कर गए, परन्तु आज उन्हें फुरसत कहां थी, भंडार का सब सामान उन्हीं के सुपुर्द था और सारा प्रबंध उन्हें ही करना था। लगभग दो हजार मनुष्यों का भोजन था, मेवादास दूध के भरे कड़ाहे में खौंचा चला रहे थे, उन जैसी खीर तो कोई बना ही न सकता था, वे जोर जोर से खौंचा चला रहे थे कि दूध लग न जाए—इतने में श्याम कुमारी उधर से गुजरी, शायद अन्दर के दालान से कोई चीज ला रही थी, मेवादास कई रोज से बात करने को भी तरस गया था, हीरा कई दिन से यहीं काम धाम कर रहा था, चौरंगीलाल भी भेड़िए की तरह गुर्राता यहीं फिरता रहता था, क्षण भर का ही सही अवसर तो यह अच्छा हाथ लगा था, इसलिए मेवादास भी झट अंदर चला गया। श्यामकुमारी हंस दी, दिल को दिल से राह, वह भी उसे ही देखने इधर आई थी। अभी आंखें चार ही हो पाई थीं और शायद मेवादास उसके गाल में चुटकी भी न

काट पाया था कि ऊपर के जंगले से स्वामी जी ने आवाज दी, 'अरे कहां मर गए सब, दूध तो फुका जा रहा है।

सेवादास ने एक छलांग में दालान पार किया और झट खौंचा चलाने लगा, बुड़बुड़ाया भी।

'आपको तो किसी कल चैन नहीं, न आप चैन लेंगे न दूसरों को लेने देंगे, कहां जला जा रहा है दूध।

'बुड़बुड़ाते क्यों हो, दूध तो जलता ही जलेगा तुम बिना आग के जलने लगे, भाई दूध को हिलाओगे नहीं तो खीर कैसे बनेगी ?

धीरज से सब काम होता है। यदि आप को किसी दूसरे पर विश्वास न हो तो खुद कर लिया कीजिए।"

उसकी बात पूरी होने से पूर्व ही स्वामी जी अपनी कोठरी में जा चुके थे, वहां अभी अभी पंडित वसंतराज लुधियाने से अपने शिष्यों से पूजन और भेंट स्वीकार करके चले आ रहे थे। उन्होंने विधिवत गुरु जी का पूजन किया, पांच कलमी आम और दो रुपए भेंट किए। संस्कृत का स्वरचित एक श्लोक गुरु जी की स्तुति में पढ़ा और अपने स्थान पर बैठ गए। तब गुरु जी ने बात छेड़ी।

आपने पंडित जी बहुतेरा घूम फिर लिया, दिल्ली वजन, आगरा मेरठ, लखनऊ, बम्बई, अलाहाबाद, बनारस अमृतसर, लाहौर, नागपुर और कश्मीर कोई जगह न छोड़ी, लड़कियां ब्याह लीं, धर्मदेव अच्छी कमाई करता है, अब आपको क्या चिन्ता, भीमदेव ने मैट्रिक पास कर ली है, इसलिए अब आप धर्म का कुछ काम करें।

जो आज्ञा महाराज'

नहीं यों नहीं मन को पक्का कर लीजिए, यह न हो कि दो दिन काम करके आपका जी उकता जाए फिर कहीं चल दें, और हम देखते ही रह जाएं।

'यदि हां कहूंगा महाराज तो उसे पूरा करूंगा, मन तो मारन्स

पड़ेगा, मैं आजाद पंछी—कभी बंधा नहीं पर अब बंध जाऊंगा। मेरा परलोक सुधरेगा, सेवा करूंगा, आपकी प्रसन्नता प्राप्त होगी।

'इतने में धर्मदेव और भवानीदास भी आ गए। महाराज ने उन्हें बिठा लिया। पंडित वसंतराज कहने लगे।

'मुझे तो धर्मदेव और इसकी माता ने कई बार मजबूर किया कि अब आप डेरे की सेवा करें। अब तो आपने भी आज्ञा कर दी।'

धर्मदेव का मन पिता की यह बात सुनकर बांसों उछला, अच्छा तो अब मान गए हैं, लेकिन कुछ सोचकर बोला।

'महाराज जी काम करगे तो यह दिल से ही करेंगे पर टिक के बैठ जाएं तभी न।

'तुम डरो मत धर्मदेव, 'पंडित जी समझाने लगे। मैंने गुरुमहाराज को विश्वास दिला दिया है कि उनसे बिना पूछे, बिना आज्ञा लिए कहीं न जाऊंगा।

'और आपकी काम करने की क्या शर्तें होंगी' भवानीदास बोला, वह कमेटी का सदस्य जो था इसलिए सब बात जान लेना चाहता था। शर्त, शर्त कुछ भी नहीं, 'पंडित जी बोले, हस्पताल का खर्च और मेरा खर्च महाराज जी देंगे, यह मालिक और मैं सिवाय इनके किसी का नौकर नहीं—वेतन कुछ नहीं लूंगा, काम डट के करूंगा, किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं करूंगा, हस्पताल को छः महीने के अन्दर अन्दर ऐसा बना दूंगा कि दूर दूर से रोगी ही नहीं इसे देखने भी लोग आएं। हां महाराज एक बात और साफ कर दूं, मैं वृद्ध हूं, ६० का हो रहा हूं उम्र भर अच्छा खाया और अच्छा पहना है, बिना अच्छा खाए पिए शरीर काम नहीं देता, घोड़े को दाना अच्छा मिले तो काम भी डट के करता है। मैं खुराक अच्छी खाऊंगा, जैसे दाल सब्जी में दो तोला घी हो, सुबह बादाम वगैरह।

'यह तो साधारण बात है पंडित जी, यहां किस बात की कमी है,

बस अब आप शुरू कर दीजिए। दूसरे वैद्य को हम इस महीने के अंत में जवाब दे देंगे।

'तब तक मैं अपना फैला हुआ धंधा समेट लूं। सब मित्रों को सूचना दे दूं कि अब कहीं बाहिर न जाऊंगा।'

बात तय हो गई। और महाराज रसोई की ओर गए। वहाँ का प्रबंध देखा—तब तक जीमने वाले आगए और भिखमंगे, तथा अन्य हरिजन बालक बालिकाएं बाहिर तालियाँ बजा कर सीताराम-जय जय सीताराम की धुन लगा रहे थे।　　....

६

गुरु पूर्णिमा समाप्त हो गई, गुरु जी का बाजार अब कि मंदा ही रहा, खर्च आमदन से बढ़ गया। मोहली ने, सदस्यों के लाख सिर पटकने पर भी रिपोर्ट के कागजात नहीं दिए और नाराज होकर चला गया। डाक्टर साहिब और थानेदार अलग खुसर-फुसर कर रहे थे। डाक्टर बेचारा न तो विलायत जा सका, पासपोर्ट बनवाने दिल्ली गया था, बीवी के गहने बेचकर जो रुपया लाया था उसमें से भी बहुत कुछ खर्च किया, पर पास पोर्ट न बन सका, हताशा लौट कर अपनी दुकान पर मक्खियां मारने लगा था। सुबह से शाम तक आठ आने भी न कमा पाता था, घर के खान पान के लिए तो गुरु जी के डेरे से बहुत कुछ आ जाता था परन्तु ऊपर की टीप टाप कहां से चले, भले कम्पाउंडरी पास हो, पर लोग तो डाक्टर ही कहते हैं। जिस स्थान पर पं० वसंत राज जी को लगाया था, वहाँ यदि वे होते तो सचमुच के डाक्टर बन जाते, पर बात रह गई। वे उदास थे पर खूबसूरतलाल ने दिलासा दिया, आप

क्यों मन मैला करते हैं डाक्टर जी—हमने यों ही थानेदारी में खाक नहीं छानी, पं० वसंतराज किसे दिन चलोगे, हमारी करामात देखना, और फिर मोहली हमारे साथ हैं जरा धीरज रखो-तेल देखो तेल की धार। एक दिन तुम्हीं इस हस्पताल के इन्चार्ज बनोगे, डाक्टर ने खींसे निपोरी। अब तो आपका ही सहारा है सुपरिडेंट साहिब—उसने थानेदार को सुपरिडेंट कह कर जैसे बदला चुकाने की कोशिश की। कम्पाउंडर असली डाक्टर और थानेदार सुपरिडेंट दोनों खुश थे और ख्वाबों की दुनिया में बहे जा रहे थे और गुरु जी को अभी जरा फुर्सत मिली तो एक बम घी के मर्तबान का ख्याल आया।

उन्हें ही नहीं, श्यामकुमारी और मेवादास को भी घी का मर्तबान सता रहा था, श्यामकुमारी तो श्याम के झुटपुटे में अपने अंचल की ओट में छिपा कर ले जाती, परन्तु मर्त- बान का वजन जयादा था, कहीं रास्ते में ठोकर लगने से गिर जाए तो घी के साथ साथ भावी जीवन का सुख स्वप्न छिन्न भिन्न हो जाने का भी भय था, फिर वह मां कैसे बन सकेगी, वह नारी थी, मां कहलाने का मोह किसी तरह भी त्याग न सकती थी, अतः वह तो पूड़ी परांठे, सब्जी खीर हल्वा पूड़ा थाल में भरे चुपचाप चली गई थी, और उसने जाते हुए स्वामी जी से कह भी दिया कि वह महीना दस दिन और मुश्किल से ही काम कर सकेगी, और वे कोई दूसरा प्रबंध करने की अभी से सोचें। स्वामी जी ने गुरु पूर्णिमा के दिनों में अधिक काम करने के सिले में ५) का नोट इनाम भी दिया था, २) वैद्य जी ने एक भँवराने, एक उनकी बीवी तथा एक वैद्यानी जी ने दिया. वह तो घर को चली गई पर हीरा अभी डेरे में ही था, उसे अभी बहुत काम करना था। चारपाइयां, बरतन, और अन्य सामान पहुंचाना था, फिर हल्वे पूड़ी की कसर रात को पूरी करनी थी, दिन में तो वह काम के कारण अधिक खा न सका था। मेवादास के लिए वह स्वर्ण संयोग था, वह चुपचाप बहुरूपिए के घर से मर्तबान उठाकर श्यामकुमारी को घर पर

सौंप आने के विचार से निकल पड़ा, स्वामी जी से कह दिया, जंगल पानी जा रहा है, स्वामी जी भी भक्तों से उलझ रहे थे, कोई तरक्की हो जाने, कोई पुत्र कामना, कोई रोगिणी स्त्री के रोग दूर करने, और कोई विद्यार्थी परीक्षा में पास हो जाने की प्रार्थना कर रहा था। समय था, और स्वामी जी बैठे थे मौज में, फिर जाने कब अवसर आए, पर स्वामी जी का मन बार बार उस रिक्त स्थान के चक्कर काट रहा था जहाँ घी का बर्तन रखा रहता था, किस लगन से बेचारी एक माई घी इकट्ठा करके लाई थी, गाय का घी, बादाम रोगन के रंग का, कैसा लज्जतदार जरा सा शक्कर डाल के खाया था बस घी के घूंट आते थे। घी में से तो घी के ही घूंट आते, पर उस समय उसके स्वाद की और कोई उपमा स्वामी जी को सूझ न रही थी कि इतने में नीचे से चौरंगी लाल की दहाड़ सुनाई दी।

'साले संत बने फिरते हैं, यह घी का मर्तबान किस मौसी के लिए जा रहा है' -

मेवादास की बदबख्ती, वह मर्तबान लेकर दो पग भी न बढ़ा था कि सामने से चौरंगी लाल मिल गया, अंधेरा था तो भी उसकी बिलार की सी आंखों से कहां छिपता वह बड़ा सा बर्तन, मेवादास के हाथ पांव फूल गए, इतने में कि वह कुछ कहे, चोरंगी ने बरतन छीन लिया, और इससे पर्व कि देवकादेव मेवादास कुछ कर धर सके, वह डेरे के आंगन में आकर लगा शोर मचाने और गालियां बकने, स्वामी जी बिजली की सी तेजी से नीचे आए, बर्त्तन ही नहीं साथ साथ चौरंगी को भी भीतर ले गए। घी का बर्त्तन वे यूं छाती से चिपटाए लिए जा रहे थे जैसे किसी मां को बिछुड़ा हुआ पुत्र मिल जाए घी को तो उसकी पुरानी जगह पर रखा, तबीयत बाग-बाग होगई और चौरंगी को समझाने लगे— देखो शोर न मचाओ, धीरज से काम लेना अच्छा है लोग-बाग इकट्ठे हो रहे हैं, ख्वामख्वाह बदनामी हो जाएगी। पर वह था चौरंगी।

'आपके धीरज ने तो सब सत्यानाश कर दिया, मैं तो इसे अभी

डेरे से बाहिर न कर दूं तो मेरा नाम चौरंगी नहीं और यदि आपने इसे एक क्षण भी आश्रय दिया तो बाप का बेटा नहीं जो यहां कभी पांव रखूं ।'

परन्तु न तो उसे नाम बदलने की जरूरत पड़ी और वह अपने बाप का बेटा भी रह गया क्योंकि जिस समय स्वामी जी और चौरंगीलाल में बहस हो रही थी मेवादास अपना डंडकमंडल उठा चलता बना, जाता हुआ स्वामी जी से तो क्या मिलता, श्याम कुमारी से भी मिल सका या नहीं, उसको एक बार जी भर कर देखने और अन्तिम बार मिलने की साध वह पूरी कर गया या वह अरमान दिल में ही लेकर गया और अपनी मेहनत के फल श्यामकुमारी के पुत्र को देखने का सौभाग्य उसे मिला या नहीं इस विषय में तो इन पंक्तियों का लेखक भी उलझन में रहा है किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका, हाँ इतना अवश्य जानता है कि इस घटना के बाद किसी ने मेवादास को उधर नहीं देखा, हाँ समय पर श्यामकुमारी के पुत्र रत्न हुआ और हीरा ने इसी प्रसन्नता में लड्डू बांटे और चौरंगीलाल ने अपने शिष्यों सहित खूब गला फाड़ फाड़कर तानें उड़ाईं । उसी दिन क्यों जिस रात मेवादास चला गया था उसी रात डेरे में प्रति वर्ष के नियमानुसार चौरंगीलाल ने संगीत गोष्टी की, वह खुद, उनके पुत्र माधव, श्यामकृष्ण, और पुत्री शशिकला, उनके शिष्य भैय्यादास तथा हरमन पाल सभी ने गाने गाए । गाते बजाते थककर छोटा लड़का श्यामकृष्ण जब पालथी तोड़कर उकड़ू बैठ गया तो चौरंगी ने उसकी पीठ पर एक घूंसा दिया, हरामजादा, यहाँ लेट लगाने की सोच रहा है घर पर मरता मादर······लड़का घूंसे के तो पी गया पर और न पड़ जाय इस डर से पालथी भी मार ली, रोया तो जरूर पर पूरे स्वर ताल में, बेसुरा रोता तो बाप उसकी हड्डी पसली तोड़ देता, खैर गुजरी, सबके गा चुकने पर चौरंगीलाल जब खुद खुश्क गले और उससे भी खुश्क मिजाज से केदार अलापने लगे, तो स्वामी जी उठके चल दिए, वह एक बार फिर घी के बर्तन को देख आना चाहते थे, चौरंगी को

उनका उठना बुरा लगा, पर शायद वे थूकने, खखारने या पेशाब करने ही गए हों, इस ख्याल से वह गाता रहा, श्रोताओं में भी सब लोग चौरंगी के डर के मारे सुनने का नाटक कर रहे थे पर तबियत सबकी उकता रही थी, एक धर्मदेव जरूर उनके हर तान पल्टे पर वाह वाह कर उठता था, उसी के कहने पर श्यामनाथ, दोषी बाबू रघुवर नारायण ने चौरंगी के लड़कों के गाते समय २, ४, ५) रुपए भी दिए थे, श्याम नाथ ने जो ५) दिए उनमें ३) उसके अपने थे, इससे लड़कों का उत्साह बढ़ता था।

धर्मदेव की वाह वाह से चौरंगी का उत्साह बढ़ता गया और वह जोर जोर से कैसी निकसी चाँदनी चाँ आ आ चाँदनी कर रहा था कि इतने में स्वामी जी फिर आसन पर आ बिराजे और चौरंगीलाल यह समझ कर कि इतनी देर कहीं यों ही लगा आए हैं, इन्हें मेरा संगीत रुचता नहीं, गाते गाते बोल उठा—आपकी यह बुरी आदत है, या तो हमें बुलाया न करें, या बीच में उठकर फिरा न करें, आप जाने हमारे संगीत को यों ही पापड़ पकौड़ा समझते हैं, जिंदगी लगा दी है मैंने, आपको जैसे गीता भागवत प्रिय है, उनका आपको मान प्रिय है, ऐसे ही यह मेरा संगीत मुझे प्रिय है, आपके मान के लिए डेरे की चौकी भरने आ जाते हैं वर्ना लाख रुपए में भी ऐसी तान नहीं मिलती—और उसने दो दो लाख की तानें उलटनी शुरू कर दीं।

उसके ख्याल से भले ही वह तानें हीरे की कान से निकलती आ रही हों, पर सुनने वालों के अन्दाज से यह लगता था कि लाख रुपए कोई दे और कहे यह गाना सुन लो तो सौदा मँहगा है, और स्वामी जी को तो सचमुच यह गाना और भी बुरा लग रहा था, वे बैठे सुनते रहे, मन मसोस कर नहीं तो चौरंगी अपना बाजा जोड़ी कोठे से नीचे फेंककर खुद भी छलांग लगा देता पर उनके मन पर जो बीत रही थी उसे कौन सुनता। उन्होंने गाने के बीच में से ही उठकर नीचे आकर बत्ती लेजाकर घी का मर्तबान जो देखा तो उसमें घी नहीं तेल ही तेल था, बहुरुपिये ने

घी खाकर उसे तेल से भर दिया था यह करामात उसके लड़कों की थी, घी तो गया ही पर डकौत के घर का तेल भी तो हजम नहीं होता, इसलिए स्वामी जी का दुःख उनके अंदर ही घुटके रह गया, कौन बांटता उनकी वह पीड़ा, मर्त्तबान तो उन्होंने रख लिया पर तेल शनिवार के दिन बहुरूपिया के घर पहुँचा दिया, वह घाटे में न रहा।

७

●●●

गुरु पूर्णिमा को बीते कई दिन हो गए सब भक्त जन अपने अपने घर जाकर अपने अपने कामों में लग गए और गुरु जी को इधर से अवकाश मिला तो हस्पताल की चिंता ने आ घेरा। कभी कभी वे सोचते किस विपदा में पड़ गए, यह कहाँ से मुसीबत खरीद ली, कभी हस्पताल का प्रबन्ध, कभी दीवार टूट गई तो उसे बनवाओ, रहट खराब हो गया तो उसकी मुरम्मत करवाओ, चक्कर में फँस गए—परन्तु हस्पताल में रोगी आते हैं, दवाई बँटती है, परोपकार और नाम घाते में, चलने दो, भगवान तो इसमें भी प्रसन्न होते हैं, यह भी उसी की भक्ति है, पर वैद्य का क्या हो ? खर्च कहाँ से आए—काश शर्मा यों दगा न देता, बेशक अपने लिए जो जी चाहे बनाता करता पर हमारा काम भी चलता तब न, चलो जाने दो—भगवान का काम है—चलता ही रहेगा। स्वामी जी का यह स्वभाव था कि जो व्यक्ति पास रह कर काम करे, उसे अच्छा न समझना, और यदि वह चला जाए तो उसकी याद में सांसे भरना, वे मजबूर थे, वैद्य बद्रीनाथ उन्हें भला ही लगता था, बात चीत, काम काज का सलीका उसका अच्छा था, पर क्या करें हस्पताल को खाने लगा था, उसे

निकालने की बात पक्की कर ली, फिर भी उसे कार्यान्वित करते झिझकते थे। इतने में पंडित वसंतराज शास्त्री अपना दवाइयों का बक्स, नीचे बिछाने के लिए पूरा फर्श (लम्बी चौड़ी दरी) जाजम, गद्दा, दवाई कूटने पीसने के बढ़िया दो खोल, एक ताम्बे का, दूसरा संगमरमर का दूधिया रंग का, अपने सोने का बड़ा पलंग, अपनी पुस्तकें, कपड़ों से भरा सूटकेस और बिस्तर, ठाठदार आदमी, सदा ठाठ बाट से गुजारी तो अब कैसे शान में कमी आने देते। पंडित जी ने आते ही प्रणाम किया और कहा—

'लीजिए महाराज मैं तो सब ओर से छुट्टी पाकर आ गया हूँ, अब जैसे कहिए जहाँ कहिए बैठ जाऊँ।'

स्वामी जी ने उन्हें बिठाया, चाय पानी पूछा—और खुद डाक्टर की दुकान पर चले गए—

जानकी वल्लभ—पंडित जी तो आ गए भाई अब किसी तरह बद्री नाथ को चलाओ यहाँ से, तुम्हीं न कहते थे यह वैद्य किसी काम का नहीं, रोज दवाइयाँ बेचता है।

'ठीक है महाराज, पर मुझे तो यह भी विश्वास नहीं कि पंडित जी इस काम को चला लेंगे—और नहीं तो लोग चर्चा करेंगे, अपने बहनोई को बिठा लिया......

'यह तो तुम्हें उस दिन कहना चाहिए था। तुम्हारी भी अजीब खोपड़ी है—लम्बे आदमी को भगवान बुद्धि कम ही देते हैं।,

तभी तो विलायत न जा सका। स्वामी जी—आप पंडित जी को साथ ले जाकर वैद्य जी से सलाह सम्पत्ति कीजिए तब तक मैं बद्रीनाथ को चलता करूँगा।

स्वामी जी को यह बात पसंद आई, और वे पंडित वसंतराज जी को साथ लेकर वैद्य शत्रुघ्नदास से सलाह करने चल दिए—अमृतसर मोहली के पास भी गए—मोहली नाराज हो गया था, कई पत्र डालने पर भी नूरपुर न आया था, उसके जिम्मे के काम भी कई पड़े थे।

उसकी नाराजगी को दूर करने के लिए ही स्वामी जी ने धर्मदेव को पत्र भी लिखा था और आज्ञा दी थी कि वह मोहली जी से क्षमा माँगे— गुरु जी के पत्र को पाकर धर्मदेव का मन रो उठा, उसका अन्तरात्मा विद्रोह करने लगा, क्या दोष किया मैंने, यह क्षमा किस बात की और मोहली जैसे मनुष्य से, कभी नहीं—अन्याय के सामने कैसे झुके, पर गुरु जी की आज्ञा, धर्म संकट में प्राण छटपटाने लगे, रघुवर नारायण के पास जाकर रोया, लम्बे लम्बे खत लिखे और फाड़ दिए और चुपचाप बैठ गया। दिल्ली से सब कुछ उत्तर न आया तो स्वामी जी स्वयं पंडित जी को साथ लेकर मोहली के पास पहुँचे—वहाँ से जालंधर तो जाना ही था, जालंधर से हुश्यारपुर सो अमृतसर कुछ दिन ठहर गए। मोहली को मनाया, चलो लड़का न सही बाप तो तुम्हारे घर आ ही गया और अब यही हमारे वैद्य जी भी होंगे।

मोहली मन गए तो स्वामी जी जालंधर गए। वहाँ वैद्य शत्रुघ्नदास से बात छिड़ गई। शत्रुघन जी झमेलों से बचकर रहने वाले जीव, मौज से खाये और मौज से सोएं—भजन किया और पड़रहे, स्वामी जी चित कहें तो चित और पुट कहें तो पुट। मगर वैद्यानी जी को हस्पताल का यह परिवर्तन पसंद न था। वैद्य बद्रीनाथ की धर्म पत्नी उनकी सहेली थीं, उनके गाँव के पास की रहने वाली, उम्र में भले ही उनकी बेटी जैसी हों, पर उनके तो बेटा बेटी नहीं, इस पर भी स्त्रियों की मित्रता आयु के भेद की ओर ध्यान नहीं देती। उनकी इच्छा न थी कि बद्रीनाथ वहाँ से हट जाएँ फिर तो डेरे के हस्पताल में जाने का उनका आनन्द ही जाता रहेगा, परन्तु स्वामी जी को तो मरीजों की जरूरत थी जिससे कि हस्पताल चले इस लिए वैद्य जी की हाँ ही इष्ट थी सो मिल गई, उनका मान भी रख लिया, वह इसलिए भी जरूरी था कि वैद्य जी के मरीजों और मित्रों में बड़े बड़े रईस आदमी थे और वे खुद भी पुराने रईस थे ठाठ अब भी कायम था। वहाँ से लौटे तो बद्रीनाथ जी स्वामी जी के आने से पहिले ही जा चुके थे, उनका

हिसाब किताब चुकता कर दिया गया था, स्वामी जी वेतन के रुपये दे ही गए थे, अतः हस्पताल की खाली गद्दी पर पंडित वसंतराज की प्राण प्रतिष्ठा की गई, और हस्पताल की गाड़ी फिर चल पड़ी।

पंडित वसंतराज, प्रकाण्ड विद्वान, न्याय दर्शनके शास्त्री अपने जमाने के प्रमुख वक्ता, अलीगढ़ के आयुर्वेदाचार्य और ज्योतिष के पारंगत, बड़े मिठ बोले परन्तु व्यवहार कुशल न थे, आज को समझते थे, कल की न सोचते थे, सब से दिल की बात कह देते कर लेते, सब में पूरा विश्वास, इस बात की चिन्ता नहीं कि जो दुख सुख की सुन रहा है वही पीठ में छुरा भी भोंक सकता है। डाक्टर से खुश भवानी-दास से प्रेम, चौरंगी से प्रसन्न। एक दो बाद महाराज से आज्ञा लेकर अपना प्रमाण पत्र (Reognition cerficate) बनवाने चले गए, तो संध्या को वापिस। हस्पताल की उन्नति, हस्पताल की श्री वृद्धि बस यही एक राग था, यही रोग बन गया। मरीज आने लगे रजिस्टर पर रोगियों की संख्या बढी तो डाक्टर जानकी वल्लभ स्वरुप की छाती पर साँप लोटने लगे। वह अकेला करे भी तो क्या ? पंडित जी लुधि-याने गए तो उसने महाराज से दबी सी शिकायत की, महाराज क्या कहते, गए तो पूछ कर ही थे। यों तो डाक्टर पंडित जी से हँसता बोलता घी खिचड़ी बना रहता, परन्तु उनकी हर बात, क्या खाते हैं, कितना खाते हैं, घी उनके लिए कितना लाया जाता है, कितने बादाम रोज टूटते हैं, छिलके कहाँ जाते हैं, सब नोट करता रहता ताकि समय पर काम आए और सनद रहे। यों वह शाम सवेरे ही हस्पताल में आता पर नजर उसकी हर चीज पर रहती थी, पंडित जी बेपरवाह थे, क्योंकि सच्चे थे, गुरु जी प्रसन्न क्योंकि काम चल रहा था।

गुरु जी ने पंडित जी को हस्पताल खर्च के लिए ४६) दिए; उसमें दवाइयों तथा और सब खर्च शामिल था, पंडित जी के लिए खान-पान की सब सामग्री डेरे से आती थी, हाँ भोजन बनता वहीं था। पंडित जी ने खाते में लिखा ४६) संतो के जमा, खर्च के खाते में दवाई बूटी

की कीमत जोड़ दी, टूटी छतरी को कपड़ा लगाया उसका खर्च भी लिख दिया और इस तरह सब लिखते रहे, हस्पताल की पर्ची का एक आना वसूल किया जाता था उसकी आय भी पंडित जी अपने पास रखते पर उसे आय की मद में जोड़ लेते थे।

एक दिन संध्या को स्वामी जी हस्पताल आए तो सब प्रबंध देख कर बड़े प्रसन्न हुए—कहने लगे—

'पंडित जी, जी चाहता है आपको एक गाय ले दी जाए, यहां जगह तो काफी है अपनी जमीन में चारे की तो कमी नहीं, बस ताजा दूध पिया कीजिए।

'गाय की सेवा कौन करेगा महाराज ?'

बीबी जसोदा (स्वामी जी की बहिन और पंडित जी की पत्नी) को बुला लीजिए—गाँव में अकेली क्या करती हैं, यहीं आपकी सेवा किया करेंगी।

'जैसी आपकी इच्छा,

गुरु जी ने एक दो चक्कर काटे और वापिस डेरे चले गए। अभी वे पहुंचे ही थे कि खूबसूरतलाल ने प्रणाम किया।

'आइए आइए इन्स्पैक्टर साहब, कब आए गाड़ी से, पर रास्ते में हस्पताल क्यों न उतर आए।

जी मैं मोटर से आया हूँ, आप यहां थे नहीं डाक्टर के यहाँ जा बैठा, वहीं बात चीत होती रही—अभी आया हूँ।

बीबी जी अच्छी हैं, बच्चे प्रसन्न हैं—

जी हां, सब आपकी कृपा है, वे तो साथ ही आई हैं—दो दिन की छुट्टी थीं, एक जगह जाना था, रिश्तेदारी में शादी थी, मैंने सोचा आज रात आपकी सेवा में ही रह जाएँ—

यह तो बहुत अच्छा किया आपने, बहुत ही अच्छा।

'कहिए हस्पताल कैसा चल रहा है, न हो तो आज मीटिंग बुला लें।

कैसी मीटिंग ?

'यही हस्पताल कमेटी का, हिसाब किताब भी देख लेंगे और जरूरी काम भी हो जाएगा, यह बातें हो ही रही थीं कि मोहली भी टांगे में आ गया और उधर से चौरंगी भी।

स्वामी जी प्रसन्न थे, रूठा मोहली भी आ गया और थानेदार तो आजकल कितना श्रद्धालु हो रहा है। खाना पीना समाप्त हुआ तो और भी दो चार जने आगए, बैठक शुरु हो गई—

खूबसूरतलाल ने सुझाव रखा—

महाराज पंडित जी यह जो बिना वेतन काम करते हैं तो इनका निजी खर्च कैसे चलता है।

'यह हम क्या जानें ?

तब तो किसी न किसी तरह हस्पताल में से ही निकालते होंगे—संभव है।

'और पर्चियों के पैसे कौन रखता है,

पंडित जी।

उनके खान पान का सारा खर्च,

'हमारे सिर'

तो क्या खर्च हुआ होगा उनके खान-पान पर अब तक।

'सब चीज डेरे से ही जाती है'

डेरे से ही जाए पर वह कुछ कीमत तो रखती है क्यों न डाक्टर जी।

जी हां डाक्टर जी बोल, मेरे पास लिखा रखा है,

पंडित जी रोज २७ बादाम खाते हैं, २ रत्ती कम छटांक घी सब्जी में पड़ता है मिर्च मसाला नमक डेढ़ आने रोज का, छटांक छटांक के चार फुलके, दो वक्त के आठ, कई बार जूठा भी छोड़ देते हैं, जाया जाता है, रात को डेढ़ पाव दूध, कुल मिला कर सौ सवा सौ रुपया बैठे गया।

स्वामी जी खुश थे डाक्टर को कितना ध्यान रहता है हमारे नफे नुकसान का।

'यह तो महंगा सौदा है महाराज'—'पंडित जी को बुलाइए, इस तरह तो हस्पताल चौपट हो जाएगा, आप उन्हें वेतन पर रखिये, और हिसाब किताब की देख रेख कमेटी ही करेगी।

'हम क्या जानें इन कामों को थानेदार जी—

'ठीक है महाराज जी, मोहल्ले ने कहा—प्रबंध तो हम लोग ही करेंगे—अब आप भला कहाँ-कहाँ क्या-क्या कुछ देख सकते हैं।

'तो पंडित जी को बुलाया जाए, डाक्टर ने उत्साह से कहा—

'रात काफी हो गई है, अंधेरे में अब उनको क्यों कष्ट दिया जाए, प्रातः आप जाइए और उन्हें जिस तरह काम करना चाहिए वैसा ही बता दीजिए।

जैसी आज्ञा—थानेदार ने जवाब दिया।

रात काफी देर तक यही बातें चलती रहीं और सुबह सवेरे ही डाक्टर जानकी वल्भ खूबसूरत लाल थानेदार, उनकी पत्नी और स्वामी जी बाहिर हस्पताल की ओर चले गए। पंडित वसंतराज तब तक नहा धो संध्या वन्दन कर चुके थे और कोठी से हस्पताल की ओर जाने को तैयार थे कि सामने से स्वामी जी को आते देखा तो आगे बढ़कर प्रणाम किया, उन्हें बैठने के लिए आराम कुर्सी दी शेष सब लोग धरती पर बिछे मूढ़ों पर बैठ गए।

पंडित जी सब को आया देख प्रसन्न हो गए। गुरु जी ने खूबसूरत लाल से बात चलाने को कहा और स्वयं हस्पताल की ओर चक्कर लगाने चल दिए—हस्पताल कोठी से दस कदम दूर सामने ही था—सामने हस्पताल के मस्तक पर एक प्लेट लगी थी, जिसपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था श्री संत नाथूराम फ्री औषधालय हस्पताल, प्रातः कालीन सूर्य की लाल पीली किरणें जब उन मोटे-मोटे अक्षरों पर पड़तीं तो वे दूर से ही चमक उठते थे, स्वामी जी उन चमकते अक्षरों को

देख कर गदगद हो रहे थे, उधर थानेदार खूबसूरत लाल ने बात शुरू की।

'पंडित जी आप जिस ढंग पर काम काम कर रहे हैं, इससे तो हस्पताल का चलना मुश्किल ही है।

पंडित जी चौंक उठे, 'मैंने तो ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे हस्पताल को किसी तरह की हानि हो, बल्कि मैं तो दिन रात इसी लगन में हूँ कि अस्पताल बढ़े, फूले फले, रोगी भी नित बढ़ रहे हैं और जो दवाई लेकर जाता है ईश्वर की कृपा से ठीक ही हो जाता है।

'यह तो ठीक है परन्तु खर्च तो बढ़ ही रहा है, दवाईयों और दूसरे खर्च का हिसाब किताब कौन रखता है।'

'हिसाब किताब तो हम खुद ही रखते हैं, और सब महाराज जी को दिखा देते हैं।'

महाराज जी बेचारे साधु, महात्मा इन बातों को क्या जानें, अब यह कौन कह सकता है कि हिसाब किताब आपका ठीक है या गलत।

काम तो विश्वास पर ही चलता है, आप मुझे बेईमान समझते हैं, महाराज जी ने कुल ४६) ही तो दिये हैं अब तक, उन्हें आमदन के खाते में लिख दिया है और खर्च की मद में सारा ब्योरा दिया है—कोई भी देख सकता है।

'खैर, यह तो महाराज जी जानें और आप, परन्तु जब महाराज जी यहाँ न हों तो हस्पताल की जिम्मेदारी किस पर ?

'मुझ पर और किस पर ?

'पर आपकी निगरानी के लिए भी तो कोई हो ?

मैं किसी की निगरानी में काम नहीं कर सकता, यह मैंने पहिले ही महाराज जी से कह दिया था, अपने काम में मैं किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता, आपको जो कहना हो महाराज जी से कहिए, मैं केवल उन्हें ही उत्तर दायी हूँ, 'और पंडित जी उठने लगे।

डॉक्टर जानकी वल्लभ, और चौरंगीलाल ने उन्हें प्रेम से बिठा लिया,

—आप गुस्से में न आएं पंडित जी, थानेदार साहिब और हमें भी तो हस्पताल का उतना ही ख्याल है जितना आपको। बातचीत करने में तो कोई हर्ज नहीं।

पंडित जी फिर बैठ गए तो थानेदार ने जैसे किसी मुजरिम से जिरह कर रहे हों पूछना शुरू किया—

'तो आप वेतन तो कुछ नहीं लेते पंडित जी।'

न, वेतन लेकर काम करना था तो मुझे यहां आने की जरूरत न थी, मैंने जीवन भर न नौकरी की न किसी को नौकर रखा।

'नौकरी की बात कौन करता है पंडित जी, बिना वेतन के आपका काम कैसे चल सकता है ?'

'खान पान का सब प्रबंध महाराज जी से किए निश्चय अनुसार डेरे से ही होता है, और मुझे क्या चाहिए ?

'परन्तु वह खर्च भी तो पुराने वैद्य की तनख्वाह से बढ़ जाता है, सारा खर्च जमा जोड़कर देखा है, कुल १५०) बनते हैं जबकि पुराने वैद्य को हम १२५) ही देते थे, वह भी तीन साल के बाद जाकर अब किए थे, शुरू में वह १००) मासिक ही पाता था, हम तो यह चाहते हैं आप का मासिक अलाउंस मुर्करर कर दिया जाए।

'मुझे अलाउंस वेतन किसी चीज की जरूरत नहीं, आप चाहे तो महाराज जी से कहकर कोई और प्रबंध कर लें, मुझे तो जैसे महाराज जी ने निश्चय किया था वैसे ही काम करना स्वीकार है।

'हम भी तो महाराज के सेवक हैं आपको हमारी बात मान ही लेनी चाहिए।

पंडित जी तो चुप रहे, पर चौरंगीलाल बोला, सुना है आप पर्चियों के पैसे भी अपने पास ही रखते हैं ?

'जरूर रखता हूं पर, वे सब आमदनी के खाते में जमा हो जाते हैं।

'आप अपने आप ही जमा जोड़ कर लेते हैं, मान लीजिए तीन रुपए आए और आपने २) जोड़ दिए, यह तो धांधली हुई।

· 'तुम्हें तमीज से बात भी नहीं करनी आती चौरंगी, जो तेरे जी में आए करूं तुम कौन होते हो इस तरह की बातें बनाने वाले, तुम सबको बेइमान ही समझते हो, मैं यहाँ सेवा करने आया हूँ कि बेइमानी से रुपया इकट्ठा करने—

चौरंगी की आंखें चढ़ गईं, परन्तु पंडित जी उसके बड़े बहनोई होते थे, थोड़ा बहुत उनका मान भी रखना जरूरी था, वह बुड़बुड़ाता हुआ उठ खड़ा हुआ हुआ, 'हमारी बला से, मां के ······ में जाए हस्पताल और हस्पताल वाले हमें क्या लेना देना है'—बड़ी-बड़ी मोटी गालियाँ देना उसकी आदत थी, बल्कि साँस के आने-जाने के साथ गाली का आना-जाना भी जरूरी था। इसका कारण स्वभाव की उग्रता और उन मिरासी उस्तादों की संगत का प्रभाव था जिनसे उसने गाना बजाना सीखा और सीधा किया था, इसलिए उसकी गाली जयादह चुभती न थी—लोग कम ही बुरा मानते थे, उसकी गालियाँ मा, बाप, बहिन, भाई भावज भतीजी, स्त्री पुत्र सब के लिए थीं, स्वामी जी भी कभी-कभी इस लपेट में आ जाते थे।

वहाँ से तीनों उठकर स्वामी जी के पास गए और चौरंगी लाल ही सब से पहले बोला—

'खुद ही समझा लीजिए अपने पंडत पुंडत को, हम तो अपनी ऐसी तैसी करा चुके, वह तो थानेदार की भी नहीं सुनता, चढ़ाइये सिर पर सब को आओ जी थानेदार जी हम चलें शहर को'—

डॉक्टर जानकी वल्लभ और चौरंगी लाल थानेदार को साथ लिए नगर की ओर चल पड़े और स्वामी जी तेवर चढ़ाए पंडित जी के पास पहुँचे,—पंडित जी तब तक सिर पर साफा रखे हस्पताल की ओर जाने के लिए तैय्यार थे कि आते ही स्वामी नाथूराम जी ने कहा—

'पंडित जी आपने पहिले हमें इतना तंग किया कि हमने वैद्य को जवाब देकर आपको रक्खा अब आप हमारी कोई बात नहीं मानते, यह कहाँ की शराफत है।

पंडित वसंतराज आश्चर्य चकित खड़े थे, वे कुछ भयभीत भी हुए जैसे हिरण गोली चलने की आवाज से घबरा जाए।

वे सोच ही रहे थे कि क्या उत्तर दें, इतने में स्वामी जी ने दूसरा तीर छोड़ा—

'खूबसूरत लाल की बात न मानकर आपने हमारा अपमान किया है, हम यहाँ धाँधली न होने देंगे, आप भी नृसिंह शर्मा बनने की सोचने लगे, अब यों हमें कोई नहीं लूट सकता, हमारे सेवक हमें चंदा भेजते हैं, उनकी बात न मानें तो आप चला लेंगे सारा खर्च ?

मैं भी तो आपका सेवक हूँ, पंडित जी ने उत्तर दिया, 'पैसे से न सही, शरीर से मन से और अपनी विद्या बुद्धि से सेवा तो कर ही रहा हूँ—

'यह सेवा किस काम की, दस बार आप लुधियाने हो आए।'

'चाहे बारह बार कहिए महाराज, लेकिन जब भी गया हूँ आपकी आज्ञा से ही गया हूँ।'

'नुकसान तो हस्पताल का हुआ, दुःख तो हमें हुआ, आपकी बला से, और फिर पर्चियों के पैसे भी आपने बिना पूछे ही खुद रखने शुरू कर दिए।

'वह तो मैंने उस दिन हिसाब में सब आपको दिखा दिए—

हम क्या जानें हिसाब किताब, जिस तरह हमारे सेवक कहें वैसे ही आपको काम करना चाहिए।

मैं भी तो आपका सेवक हूँ महाराज, सेवकों का सेवक नहीं हूँ।

स्वामी जी शायद और भी कुछ कहते पर इतने में एक रोगी आ गया, और पंडित जी उसके साथ हस्पताल की ओर चल पड़े, उन्हें जाते देख स्वामी जी ने कहा—

संध्या को डेरे में आइएगा आप—वहीं सब बात चीत होगी। इतना कह स्वामी जी भी नगर की ओर चल दिए।

पंडित वसंतराज भरे मन से हस्पताल की ओर डग भरे जा रहे थे,

अब उन्हें यही हस्पताल ऐसा दिखने लगा जैसे धू धू जलता श्मशान हो—

कहाँ तो प्रफुल्लित मन और उत्साह भरी उमंगों से वे हस्पताल में जाते थे और कहाँ आज टूटे हुए दिल और उलझा हुआ दिमाग लेकर चले जा रहे थे। उन्हें हैरानी थी यह एक दम काया पलट कैसी, कल तो स्वामी जी मुझे गाय ले देने की बात कह रहे थे, स्वयं आग्रह से उन्होंने मुझे बुलाया और यहाँ काम करने पर जोर दिया, जब सब बातें तय हो गई और मैंने काम करना शुरू कर दिया तो काम से भी प्रसन्न हुए, पर अब एक रात में ही ऐसी क्या गाज गिर गई, सब मुझे बेईमान समझने लगे, मैंने तो चारों ओर से अपना सम्बन्ध तोड़ कर इस हस्पताल को ही अपना सब कुछ मान लिया, परन्तु इसी के लिए अब मुझे जली कटी सुननी पड़ रही हैं बल्कि अपमान भी सहना पड़ रहा है—पर यह सब क्यों हो रहा है, मैंने तो डॉक्टर जानकी वल्लभ, खूबसूरत लाल थानेदार, या फिर चौरंगीलाल का कुछ नहीं बिगाड़ा, स्वामी जी तो अपने गुरु महाराज हैं, उनके प्रति मन में श्रद्धा भी है फिर यह सब प्रताड़ना कैसी ?

पंडित जी इन विचारों में तेजी से उलझते जा रहे थे और कदम हस्पताल की ओर, बड़े ढीले पड़ रहे थे। हस्पताल पहुँच कर उन्होंने रोगियों को देखना शुरू किया, पेट के दर्द वाले को बुखार, और बुखार वाले को जुकाम और जुकाम वाले को पीलिया बताने लगे, हाथ डालते लवण भास्कर की शीशी, को तो हाथ में आ जाती प्रमेह पीड़िका की शीशी खीज उठते थे रोगी हैरान थे यह क्या हो रहा है, तब उन्होंने अपने एक विद्यार्थी को जो उनसे आयुर्वेद पढ़ा करता और काम में सहायता भी दिया करता था, बुलाकर रोगियों को देखने और दवा देने को कहा और स्वयं वापिस कोठी में आ गए और विचार मग्न हो गए।

उधर डेरे की ओर जाते-जाते स्वामी जी सोच रहे थे, खूबसूरत लाल की बात पंडित जी ने नहीं रक्खी, वह इसमें अपमान समझेगा,

मुश्किल से तो वह मना था उसका लड़का अच्छा न होता तो वह कभी दुबारा यहाँ न आया होता ऐसा प्रभाव शाली आदमी, और पंडित को समझ नहीं आती, शाम को आएगा तो समझाएंगे।

स्वामी जी डेरे पहुंचे, सबके खान पान का प्रबंध किया स्वयं भी समय पर भोग लगाया और तब आराम करने अपने चौबारे में चले गए। शरीर तो उनका आराम कर रहा था, पर मन हस्पताल में ही उलझ रहा था, बार-बार यही विचार सता रहा था कि किसी तरह खूबसूरत लाल की बात रह जाए और पंडित जी हाथ से न जानें पाएं। नहीं तो काम फिर ठप हो जाएगा, लेकिन वे क्या जानते थे कि काम को जारी रखने के लिए और बेचारे पंडित वसंतराज को वहां से हटाने के लिए चाल चलने वाले इस समय भी नीचे के कमरे में बैठे खिचड़ी पका रहें थे।

तीन बज गए तो स्वामी जी महाराज नीचे आए, डाक्टर जानकी वल्लभ उनके लिए बादाम रगड़ रहे थे थानेदार और डाक्टर दोनों ने उठकर प्रणाम किया—स्वामी जी अपने सिंहासन पर बैठ गए तो थानेदार ने ही बात शुरू की—

'देखिए न महाराज, पंडित वसंतराज हमारी बात न मानकर उलटा हमें ही आँखें दिखाने लगे—

उसने तो मेरी बात भी अनसुनी कर दी। महाराज जी बोले

'आपके बहनोई भी तो हैं, रिश्ता ही ऐसा है, वे दबेंगे कैसे महाराज जी' डाक्टर ने पानी चढ़ाया,

रिश्तेदार होंगे जिसके होंगे, यहाँ तो गुरु का द्वार है, किसी का कोई रिश्ता नाता नहीं, जी में आए काम करो नहीं तो मौज मारो—फकीर पर किसका दबाव।

'इनसे काम भी नहीं चल सकता, महाराज, जो अपनी मन मानी करें, अपनी ही हकूमत चलाए, वह सभा सुसाइटी का काम कैसे कर सकता है, वहां तो हर एक का दास होके रहना पड़ता है,' थानेदार

ने बढ़ावा दिया।

'वे ठहरे पंडित, पराया माल खाने वाले, लेक्चर झाड़ लेना और कथा कर लेना और बात है, हस्पताल चलाना और—डाक्टर अपने लिए जमीन बनाता हुआ बोला—

'शाम को पंडित जी को यहीं बुला लिया है एक बार फिर उन्हें समझा देखेंगे। महाराज ने सोचते सोचते कहा—

व्यर्थ है, गुरुदेव, वैसे जैसे आपकी इच्छा हो, हम तो चलते मर्द के कदमों की चाप से उसके दिल की गहराई तक नाप लेते हैं, थानेदार ने अपने अनुभव का प्रभाव दिखाना चाहा।

इतने में शर्दाई तैयार हो गई, स्वामी जी, और दोनों भक्तों ने एक एक गिलास पिया, डाक्टर ने बरतन सँभाले और आज्ञा लेकर दुकान बढ़ाने चला जहाँ दवाइयों पर मक्खियाँ भिन भिना रही थीं और थानेदार लोटे में जल भरकर बाहिर की ओर चल दिए।

८

●●●

पंडित वसंत राज ने सूर्य डूबते ही हस्पताल बन्द किया, नहाए-धोए और बिना खाए पिए ही डेरे की ओर चल पड़े, उनका मन बड़ा उद्विग्न था। डेरा, हस्पताल से कोई एक डेढ़ मील दूरी पर था, पंडित जी का मन बैठ रहा था तो तन भी साथ न दे रहा था, टाँगा कोई मिला नहीं, रास्ते में एक दो जगह बैठकर जैसे तैसे डेरे में पहुँच गए। स्वामी जी ऊपर बैठे थे, अकेले ही, चौरंगी और डाक्टर अभी आए न थे, और थानेदार अभी भोजन ही कर रहे थे पंडित जी ने जाकर साष्टांग प्रणाम किया और धरती पर बैठ गए।

स्वामी जी ने जल्दी जल्दी अपना पाठ समाप्त किया और धीरज से बात चलाई,—

'आपने पंडित जी खूबसूरतलाल की बात न मान कर अच्छा नहीं किया, वह हमारा परम श्रद्धालु सेवक है, और हमारा हित चिन्तक है,

'मैं भी तो आपका हित चिंतक हूँ महाराज, मुझे काम करने का अवसर दिया होता, मुश्किल से दो महीने मुझे काम करते बीते होंगे, संस्थाओं का काम कम से कम छै महीने में पता देता है, और फिर इन दो महीनों में भी हस्पताल का कार्य अच्छा ही हुआ है—

'काम तो दो दिन में ही बता देता है, आप छः महीने की बात कर रहे हैं।'

'तो आप जैसा भी कहें जिस तरह भी कहें मैं काम करने को तैयार हूँ, हां, एक बात जरूर है कि आज्ञा तो आपकी ही मानूँगा, आप जिस किसी से भी सलाह सम्मत्ति करके जो भी कहें शिरोधार्य, अन्य किसी का कोई अधिकार नहीं कि मुझे आँख दिखाए।'

स्वामी जी जाने कि सोच में पड़ गए, और कुछ देर चुप रह कर बोले, आपनें भोजन तो कर लिया होगा,

'नहीं महाराज, तबियत आज भोजन करने की नहीं,

'नहीं नहीं यह कैसे होगा, आप नीचे जाकर भोजन कर आईए, बिना खाए तो स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा,

'मन खाने को न चाहे तो खाने से भी स्वास्थ्य बिगड़ जाता है महाराज, फिर मैं तो वैद्य हूँ।

'यानी इस विषय में हम से अधिक जानकारी है आपकी, अच्छा भोजन न सही तो दूध मंगवा देते हैं, और यह लीजिए ४०), आगे का खर्च पिछले ४६) तो खतम हो गए होंगे, अब आपको और ८६) आ गए,

पंडित जी का मन प्रसन्न हो गया और समझे कि हस्पताल उन्हीं के हाथ में रह गया, उन्होंने ४०) लेकर जेब में रख लिए, साथ ही साथ यह भी बता दिया कि पिछले ४६) रुपए के खर्च का हिसाब उन्होंने बही

खाते में लिख रखा है, महाराज जब चाहें, देख लें, जाँच पड़ताल कर लें—इतने में स्वामी जी ने आवाज दी—सत्यस्वरूप, ओ सत्यस्वरूप, पंडित जी के लिए गर्म गर्म दूध ले आ—

सत्यस्वरूप दूध ले आया, और पंडित जी के सामने रख दिया, वे अभी उसे हाथ लगा न पाए थे कि चोरंगीलाल, जानकी बल्लभ, भवानी दास और उनके पीछे, कुल्ला करके मुँह में पान दबाए थानेदार साहिब भी चले आ रहे थे।

सबने आते ही महाराज को प्रणाम किया और बैठ गए—कुछ इधर उधर की बातें हुईं और और तब छिड़ गई हस्पताल की बात, जहाँ से प्रातः छोड़ी गई थी वहीं से कड़ी जोड़ ली गई—सबसे पहले थानेदार ही शुरू हुआ ......

'अब देखिए न पंडित जी, जैसे यह दूध का गिलास आप पी रहे हैं, यह किसी हिसाब किताब में नही, बट्टे खाते, यदि आपको अपने अलाउंस में से पीना हो तो कैसे पुगेगा, बताइए—और रोज का यह दूध शुमार किया जाए तो कितना खर्च बैठेगा, अब बताइए हस्पताल डूबेगा कि रहेगा—

थानेदार की इस बात में सबका कुछ कुछ कमीना पन दिखाई दिया, स्वामी जी को भी बात हल्की लगी, पर विरोध कैसे कर सकते थे, चौरंगीलाल भी तिलमिलाकर रह गया, पर जिन्हें यह बात कही गई थी, वे पंडित जी तो जैसे उबल पड़े, सामने पड़ा दूध का गिलास उन्हें विष सा लगा, दूध तो पड़ा पड़ा ठंडा हो गया पर पंडित जी को उफान आ गया, एक दम खड़े हो गए, जेब से ४०) के दस दस के चार नोट उठा कर महाराज जी के सामने पटक दिए,

'उठाइए महाराज अपने रुपए, और यह रहा आपका दूध, ऐसे ऐसे दूध के गिलास मैंने लाखों बार कुत्तों को पिला दिए, मैं कोई भिखमंगा नहीं जो आपके टुकड़े तोड़ने आ पड़ा हूँ, ऐसे ऐसे कई रईस मेरे चरण चूमने आते हैं, जाने मुझे क्या समझ लिया है आप सबने। वास्तव में

अपने गुण और विद्वता के कारण पंडित वसंतराज की काफी ख्याति थी और अपने क्षेत्र में वे पुजते थे, वे तो जाने किस तरह यों बंध गए थे।

पंडित जी एक दम सीढ़ियां उतर गए, क्षण भर के लिए तो सब हत्‌बुद्धि हो गए, स्वामी जी जरा स्थिर हुए तो उन्हें कुछ ख्याल आया भवानीदास के हाथ में ४०) थमा दिए और कहा कि जैसे भी हो भाग के पंडित जी को दे आए, कितनी भी जिद्द करें, जेब में डाल ही देना। भवानीदास नोट लेकर भाग खड़ा हुआ, लेकिन पंडित जी तो अभी गली की नुक्कड़ पर ही मुश्किल से पहुँच पाए थे, दिल दिमाग में तूफान उठ रहा था तो मन में आँधी आँखों में वर्षा, वे ठोकरें खाते अंधेरे में धीरे धीरे आग बढ़ रहे थे, उनके पांव मन के अंधेरी और तूफान का साथ न दे रहे थे, आँखों का पानी भी रास्ता रोक लेता था। भवानीदास चुपके से पीछे पीछे हो लिया, उसने चालीस रुपए उनके कोट की बाहिर की जेब में रख दिए और वैसे ही खामोशी से लौट गया, पंडित जी को खबर ही न लगी कि कौन क्या कर गया है, अब वे सड़क पर पहुँच गए थे, अन्तर का तूफान धीमा पड़ गया था, हस्पताल की ओर कदम बढ़ा दिए, वे अब एकांत में बैठकर रोना चाहते थे।

पंडित जी हस्पताल पहुँचकर, कोठी के बरामदे में बैठ कर रोने लगे और बार बार भगवती से प्रार्थना करने लगे कि किसी तरह इस बंधन से मुक्त हों, अभी कुछ देर पहिले हस्पताल की उन्नति के लिए भगवान से मिन्नतें मानते थे और अब इससे छुटकारा पाने की विनती कर रहे थे, मानव मन भी कैसा विचित्र है और परिस्थितियों का कितना गुलाम।

और डेरे में स्वामी जी और उनके चेले चांटे गई रात तक पंडित जी के इस व्यवहार की कटु आलोचना कर रहे थे। चौरंगीलाल को तो भगवान दे, बात हाथ आ जाए और वह बोलता न चला जाए—

'लो देख लिया पंडित पना, बड़े बड़े रईस इनके पैर पूजते हैं और वोह साली हरामखोर उमरी, उसके तल्वे सहलाते फिरते है, मुझे तो

जसोदा ने रोक दिया वर्ना उसकी नाक काट देता, और फिर पूछता इनसे, क्यों जानकी वल्लभ।

'मुझे क्या पूछते हो भाई, वह तो यहाँ भी आई थी तुम्हारे पंडित जी को देखने, न रंग न रूप और पंडित जी भीगी बिल्ली बने म्याऊं म्याऊँ करते उसके आगे पीछे फिरने लगे थे और अब हमारी तो छोड़िए हमारे महाराज की उतनी भी इज्जत नहीं करते—अजी छोड़िए औरतों के गुलाम कभी हस्पताल भी चला सकते हैं।' थानेदार ने कड़-वाहट से कहा —

भवानी दास हंस दिया, उसने एक बार थानेदार का खत पढ़ा था, महाराज जी को उसने लिखा था, 'गुरु जी और तो सब आपकी कृपा है, पर एक प्रार्थना है, मेरे दोनों पुत्र वीरेन्द्र और शैलेन्द्र और विमला जीती रहे, और कोई सन्तान न हो। चार छः आदमी और भी बैठे थे, स्वामी जी बात समझ न सके थे, उन्होंने दुबारा फिर पूछा तो भवानी हँस दिया था, उसे मजाक सूझा—कहने लगा,

महाराज जी थानेदार साहिब यह पूछना चाहते हैं कि आपने अपने हस्तपताल में बर्थकन्ट्रौल (Birth caonutrol) का भी प्रबंध किया है कि नहीं।

'वह क्या होता है भाई हमतो अंग्रेजी पढ़े नहीं'—तब हंसी छोड़ भवानीदास ने बात समझावी, और स्वामी जी मुस्कराकर चुप हो गए थे। थानेदार ने जब औरतों के गुलाम वाली बात कही तो भवानीदास को पुरानी घटना याद आ गई और वह हँस पड़ा।

भवानीदास हँसा तो थानेदार को ताज्जुब हुआ, वह समझ न सका, बे वक्त की रागिनी इस हँसी को। स्वामी जी ने मीठी सी डांट पिलाई और भवानी दास चुप हो गया, लेकिन लबों पर खामोशी की मुहर लगाने से पहिले इतनी बात जरूर कह गया—पंडित और वे पंडित क्या थानेदार जी, औरत नहीं, नफस के सब गुलाम होते हैं, नफस की गुलामी से औरत की गुलामी फिर भी अच्छी है।

भवानीदास की बात थानेदार के मन के किसी कोने पर पत्थर सी जाकर लगी, वह वहाँ बैठ न सका और अपने सोने के स्थान की ओर बढ़ा और सब भक्त भी स्वामी जी को प्रणाम कर चल दिए, थानेदार की चारपाई उसकी पत्नी के पास ही चौबारे पर बिछाई गई थी, वह जाकर चारपाई पर बैठा ही था कि उसकी पत्नी नें जो अभी सोई न थी, नम्रता से कहा—बाबू जी आप तो चलते काम में रोड़ा अटकाते हैं, हस्पताल चलता रहने दीजिए, पंडित जी काम करते रहें तो आपका क्या बिगाड़ है—थानेदार की आँखों में खून उतर आया, घर पर होते तो हंटर उठाते पर संतों का डेरा है, गुस्सा पीकर रह गए जोर से हूँ—कहा और लेट गए।

क्रोध, क्षोभ और घृणा मिश्रित भय से भरी यह 'हूँ' थानेदार की पत्नी पर बिजली सी गिरी और वह कांप उठी, उसने आंखें मूँद लीं और करवट बदल कर सो रही।

९



पंडित बसंतराज रात भर छटपटपाते रहे बहुत देर बाद उनकी आंख लगी तो उन्होंने विचित्र स्वप्न देखा—

उन्होंने देखा उमरी बाल बनाए, सुंदर वस्त्र पहिने, सजधज कर एक बागीचे में बैठी है, वे दूर से उसे पहचान न सके, कहीं कोई और ही न हो, पर उसने इशारे से उन्हें पास बला लिया वे झिझकते हुए उसके करीब पहुंचे, तो उसे पहचान कर बड़े प्रसन्न हुए, कहने लगे, तुमतो यहाँ सुख में हो, बाग बागीचे की सर कर रही हो, और मैं यहां दुःख में पड़ गया—

उमरी हँस रही थी, 'मैं अकेली हूँ पर अब मुझे किसी प्रकार की

चिन्ता नहीं, दुःख है तो यह कि मेरे कारण जसोदा देवी को बड़ा कष्ट हुआ, मैं तो इस लिए आपको जल्दी छोड़ आई थी कि अब उसी के हो रहें, आप उसे भी छोड़ आए, आप चले जाइए, वापिस वही जाइए—'वह इतना कह कर चलती बनी, पंडित जी हाथ बढ़ा उसका पीछा करने लगे, पर वह अदृश्य हो गई।

पंडित जी की आंख खुल गई, उन्होंने बढ़ा हुआ हाथ समेट लिया, एक आह भरी और करवट बदल कर पड़े रहे।

उमरी के लिए पंडित जी के मन में बड़ा प्रेम था, जब तक वह जीती रही, उसका पूरा-पूरा साथ निभाया, यों तो पंडित जी का विवाह २२ वर्ष की आयु में ही होगया था, पर तबीयत के बड़े रंगीले थे। बचपन से ही चंचल स्वभाव के थे। अभी चार छः वर्ष होंगे कि पिता की मृत्यु हो गई, मां ने कठिन परिश्रम से पाला पोसा, जरा बड़े हुए तो दिन भर खेल कूद में विताते, बड़े भाई ने एक बार गुस्से में आकर पीट दिया तो घर से निकल भागे। संस्कार कह लीजिए, भाग्य समझिए, चपल बुद्धि की करामात कहिए या फिर परिश्रम और अध्यवसाय, उन्होंने घूम फिर कर खूब विद्या अध्ययन की। पैसे का बल तो नहीं, सेवा का भाव था उसी के जोर पर चल निकले। पहले अमृतसर गए, वहां पर रतनलाल के आश्रय में रहे। पं रत्नलाल थे तो एक छोटी सी लायब्रेरी के मैनेजर ही पर कार्यकुशल और मिलनसार थे, सभी छोटे बड़े उनको मानते थे, विद्वान थे और गुणी, संतान तो न थी जवानी में शादी हुई थी, स्त्री बड़ी सुशील और सुन्दर मिली थी, परन्तु वह जल्दी ही परलोक सिधार गई, उसी के वियोग में घर बार छोड़ जगह-जगह घूमते रहे, शरीर शिथिल होने लगा तो जनता की सेवा में लग गए, दूसरा विवाह नहीं किया, लायब्रेरी में काम करते थे, एक दिन कहीं बसंतराज आ गए और अपनी व्यथा गाथा सुनाई, रतनलाल जी ने उन्हें आश्रय दिया और पिता की तरह लालन-पालन करने लगे। संस्कृत की पाठ शाला में नाम लिखवा दिया, और पड़ौस के एक मंदिर में

पूजन का कुछ काम भी दिला दिया। मंदिर में एक दिन भगवान की मूर्ति का कोई जेवर चोरी हो गया, वसंतराज नए नए आए थे, उन्हीं पर सब संदेह करने लगे, धर्म पिता रत्नलाल जी को कितना कष्ट होता, इसी भय के मारे वसंतराज अमृतसर से भाग खड़े हुए, किसी न किसी तरह कभी पैदल, कभी गाड़ी में, कभी मजूरी करके कभी बोझा ढोकर अपना निर्वाह करते काशी जी आ गए। विद्या की भूख थी और काशी उन दिनों प्राच्य विद्या का सागर था। एक क्षेत्र में नाम लिखा लिया और पढ़ना शुरू कर दिया। बुद्धि कुशाग्र थी, महीने का काम छै दिन में कर लेते, गुरु जी की सेवा भी लगन से करते और विद्यार्थी जब मेले तमाशे या किसी सेठ साहूकार के यहाँ जीमने जाते वसंतराज गुरु जी की सेवा करते, प्रसन्न हो गुरु जी खूब पढ़ाते।

इस तरह ६-७ वर्ष में ही वसंतराज व्याकरण न्याय, काव्य दर्शन, ज्योतिष, छन्द सब शास्त्रों में प्रवीण होकर घर आये, तो रोगिणी मां उन्हें देखकर प्रसन्न हुईं, हर्ष और दुःख के मिले जुले भावों ने आँखों में खारा पानी भर दिया और वह गंगा जमुना सा बहने लगा, हर्ष था पुत्र मिलन सुख का जो वर्षों बाद कुछ बनके आया था, दुःख यह कि अब अंत निकट था। बसंतराज मां से जी भर बातें भी न कर सके कि उसका जीवन दीप बुझ गया, शोक ग्रस्त मन लेकर मां की इच्छानुसार गोदावरी में उनका अस्थि प्रवाह और पिण्ड दान किया। घर लौटे तो यह जानकर कि गांव के सम्बन्धियों ने उनके विद्वान बन जाने से जल कर पुस्तकों का सन्दूक जला दिया है अपना गाँव ही छोड़ दिया, दुःख पर दुख, कोढ़ में खाज, गांव छोड़कर ननिहाल आ गए और आयुर्वेद का अध्ययन करने लगे। वहीं के एक वैद्यजी वसंत राज के मामा के मित्र थे, एक रोगी की चिकित्सा करने नूरपुर आए तो उसे भी साथ लेते आए। उन दिनों नूरपुर क्या सभी नगरों और ग्रामों में आर्यसमाज, सनातन धर्म के शास्त्रार्थ हुआ करते थे, वसंतराज नए-नए पढ़ कर आए थे वाणी में जादू था, दलीलें उनकी अकाट्य और शास्त्र के प्रमाण

अथाह बस सुनने वाले वाह वाह कर उठते, उम्र जवान थी. रूप भगवन ने खूब दिया था, सनातन सभा वाले तो उन पर जान छिड़कने लगे और वे वहीं के हो रहे। पाठशाला खोल ली, विद्यार्थियों को पढ़ाते और रात्रि को श्रीमद्भागवत की कथा बाँचते, बीच-बीच में शास्त्रार्थ भी होते रहते। चौरंगीलाल के पिता भी विद्वान थे वे वसंतराज से शास्त्र चर्चा करते, और उसका लोहा मानते थे—सोचने लगे, लड़का तो गुणी है, विद्वान और बुद्धिमान सदाचारी, क्यों न छोटी लड़की का रिश्ता कर दें। साधारण स्थिति के पर सच्चे ब्राह्मण थे, बात और हठ के पक्के, दूसरे बहुत से ब्राह्मण भी इसी ताक में थे, परन्तु चौरंगी के पिता का इरादा देख कर चुप हो रहे और जब किसी कारण वश नूरपुर की सभा से सम्बंध विच्छेद हो गया और वसंतराज ने पास के गांव बीरमपुर में जाकर अपनी पाठशाला खोल ली और वहीं जम गए तो पंडित बृहस्पति दत्त ने वहीं जाकर सम्बंध पक्का कर दिया और शीघ्र ही पंडित वसंत राज का विवाह हो गया।

जसोदा देवी की आयु १५-१६ वर्ष ही थी पर उनका भाग्य उनसे वर्षों बड़ा था, पं० वसंतराज के साथ विवाह होते ही घर में जैसे लक्ष्मी ही बरसने लगी। जहां दस की आशा होती सौ मिलते, चार छै महीने बीतते न बीतते अमृतसर के पं० रत्नलाल की कृपा से उन्हें बम्बई में एक विद्यालय में अध्यापन का कार्य मिल गया, नाम भी बढ़ा, और दाम भी यथेष्ट मिले। पंडित जी तो बम्बई में रहकर बड़े खुश थे परन्तु जसोदा देवी का मन वहां न लगता था, एक तो देश से कोसों दूर, माता पिता का नया नया विछोह, स्वास्थ्य भी उनका बम्बई के जलवायु को रास न आया और वे अपने पिता जी के साथ घर लौट गईं। समय पाकर उनके यहां एक पुत्र हुआ, उसे लेकर अपने गांव में ही रहने लगीं। धर्मनष्टि सत्यनिष्ठ और सरल प्रकृति की संयमशील नारी अपने गांव के घर में ही स्वर्ग मानती थीं। पंडित जी ने विद्यालय छोड़कर

जीव दया प्रचारिणी समिति का काम शुरु कर दिया और प्रायः यात्रा ही में रहते। आमदनी खूब बढ़ गई, परन्तु महीने में दस दिन घर तो बीस दिन बाहिर, घर आते पीछे तो बुलाव के तार पहिले ही पहुंच जाते।

बाहिर से घर आते तो जसोदा देवी के लिए सुंदर वस्त्र या कोई जेवर, बच्चे के लिए खिलौने और ढेरों फल मिठाई ले आते, भोली जसोदा इसी में फूली न समाती पर वह यह न समझती थी कि उसके लिए यह सब मँहगा पड़ रहा है। पंडित जी रसिक थे, काव्य साहित्य के मर्मज्ञ, रूपरसके भौंरे जवान और रूपवान, वाणी में जादू, कलियां टूट टूट पड़ती थी, वे भी जहां तक बने कलिका रसपान कर ही उड़ जाते थे, कहीं बंध न पाए थे। रूप का बंधन छोड़ना कठिन है-उसका तो वे छोड़ पाए पर स्नेह का बंधन जब बांध लेता है तो सब चातुरी भूल जाती है। पंडित जी की कलियों से तो न बंध सके पर एक मुरझाए फूल पर सब कुछ न्यौछावर कर बैठे। उर्मी रिश्ते में उनकी छोटी भावज थी पर १६-१८ की उम्र में ही विधवा हो गई थी, लुधियाने में अपनी सास के साथ किसी तरह जीवन निर्वाह करती थी, पंडित जी एक दो बार अपने छोटे लड़के का इलाज कराने वहां गए तो वहीं के हो रहे। पहले तो उन दोनों की दशा पर तरस और रहम आया, करुणा ने प्रेम के अंकुर बोये, परस्पर के मिलन ने बढ़ावा दिया, आंखों-आंखों में बातें हुईं और उर्मी ने पंडित जी के चरणों में सर्वस्व निछावर कर दिया: जसोदा देवी पहले तो किसी बात पर विश्वास न करती थी, स्वयं सत्य निष्ठ तो पंडित जी को भी वैसा ही समझती थी। सादा रहन-सहन और ऊंचे विचार संयम को ही धर्म और भगवद्भक्ति को ही प्रेम का मर्म समझती थी, इसके विपरीत उर्मी में जीवन की भूख थी, वह सज संवर बन ठन कर रहती थी, जीवन के क्षणों को सुख और स्नेह से भरपूर रखना उसका लक्ष्य था, जसोदा देवी संध्याकालीन क्षितिज की लालिमा थी तो उर्मी खिली हुई सरस चाँदनी रात, पंडित जी का सुझाव उधर ही बढता गया। यह नहीं कि वे जसोदा देवी और उसके

बच्चों का लालन पालन न करते हों, कर्त्तव्य वश सब कुछ करते थे, परन्तु स्नेह और कर्त्तव्य में स्नेह ऊपर रहता था और कर्त्तव्य दब कर, फिर एक ही आदमी की आय कहां तक काम देती, इसलिए इसके कष्ट का पहलू जसोदा देवी के हिस्से में ही पड़ता था जब कि उम्री गुलछर्रे उड़ाती थी। पहले-पहल जसोदा देवी 'हमारी बला' से कहकर टालती गई पर जब पानी पुलों के ऊपर से होकर बहने लगा, तो वे सजग हुई, पर तब तक चिड़िया खेत को साफ कर चुकी थी। जसोदा देवी ने धर्म का भय, प्रेम का वास्ता, सत्य की दुहाई दी, पत्थर पर पड़ी बूंदें उसे भीम नहीं बना सकतीं। किसी ने कहा है—प्रेम खसरे का रोग है, बड़ी उम्र में तोआए और भी भयंकर, सो पंडित जी का उमरी से प्रेम, पक्की उमर का था जवानी का तूफानी बहाव न था कि आया और चला गया वह तो क्वार की मीठी धूप थी जो जितनी चढ़े उतनी ही भाए। पंडित जी बुरी तरह फंस गए थे। परन्तु जसोदा देवी नें हिम्मत न हारी, वह कई बार उमरी के घर जातीं उसकी मिन्नत समाजत करतीं। अपना दुःख रोतीं तो वह जवाब देती।

'ले जाओ अपने पंडित जी को, मैंने कोई उन्हें बांध रखा है।'

कहनें को तो वह ठीक ही कहती थी, देखने को कोई रस्सी या लोहे की जंजीर पंडित जी के हाथ पांव में न पड़ी थी फिर भी वह हिल न सकते थे। वह कहती भी ऊपर के मन से थी, क्योंकि जानती थी कि पंडित जी जा न सकेंगे, अंतर का, मन का बंधन, रेशमी धागे की ऐसी गांठ है जो यों ही नहीं खुल जाती, खींचो तो और भी कस जाए, सो जसोदा देवी हार मान कर बैठ रहीं। किसी किसी दिन क्षोभ और जलन होती तो घर आए पंडित जी से दो-दो हाथ कर लेतीं—और चारा ही क्या था। पास पड़ौस सम्बंधी रिश्तेवार सब में चर्चा हुई, यहां तक कि जवान बेटों नें भी कहा सुना, पर पंडित जी ने एक बार लगाई तो तीस साल तक निभाई और आखिर महीना बीस दिन बीमार रह कर उम्री मर गई तभी साथ छूटा। जब तक बीमार रही तब तक

जी जान से अकेले ही उसकी सेवा की, मर गई तो उसका अंतिम संस्कार छोटे लड़के भीमदेव से कराया, और अब फारिग होकर, सब ओर से छुट्टी पाकर, परलोक सुधारने और विरही दिल को परचाने वे हस्पताल की शरण में आए थे, परन्तु हस्पताल तो शारीरिक रोगों का उपचार करता है, पंडित जी लोगों के रोग दूर करने आए थे परन्तु कारी ज़ख्म लेकर हटे, हस्पताल के रोगियों को वे तो संभाल लेते परन्तु हस्पताल ने उन्हें न संभाला।

१०

सुबह मुंह अंधेरे ही स्वामी जी उठे, चौरंगीलाल और भवानीदास को जगाया और आज्ञा दी, कि पंडित जी का बोरिया बिस्तर गोल करा दो । वे दोनों आए और आते ही, भवानीदास तो पंडित जी का सामान बंधवाने लगा और चौरंगीलाल ने हुक्म सुनाया—महाराजजी की आज्ञा है कि आप इसी गाड़ी से घर चले जाएं।

पंडित जी खुश हुए, बिल्ली के भागों छींका टूटा, भगवती ने सुन ली, और वे हसरत भरी निगाह से हस्पताल को देखते अपना कोट और साफा पहन कर चल पड़े । उनका सूट केस भवानीदास उठाए था और बिस्तर चौरंगीलाल, स्टेशन पर आए तो गाड़ी तैयार खड़ी थी, टिकट कटाया और चढ़ बैठे । गाड़ी चल पड़ी और पंडित जी ने तम्बाकू की डिबिया के लिए जेब में हाथ डाला । वे खैनी खाते थे, यह आदत विद्या के साथ-साथ काशी से ही वहाँ की निशानी ले आए थे। डिबिया के साथ साथ दस दस रुपए के चारों नोट भी हाथ में आ गए।

उनकी हैरानी की हद न रही, उन्हें वे नोट ऐसे लग रहे थे जैसे अभी डंक मार देंगे, ख्याल आया, उतर कर अभी दे आएं, पर गाड़ी फर्राटे भरती जा रही थी, फिर ख्याल आया गाड़ी से बाहिर फेंक दें, परन्तु मन ने कहा, ढेरों तो काम किया है और खरल, अपनी कीमती दवाएं और फर्श, चारपाई, किताबें छतरी वहीं रह गए, यह ४०) तो उनके मूल्य का दशमांश भी नहीं और जेब भी खाली है और आगे काम भी देखना है, अतः रुपए चुपचाप जेब में रख लिए।

"घर पहुंचे तो जसोदा देवी हक्का बक्का रह गईं, यह क्या, आप आगए। मैं न कहती थी आप जैसे आजाद पंछी कहां बंध कर बैठ सकते हैं, उन्नी जैसी बांध कर न बिठा सकी फिर हस्पताल तो बेचारा ईंट पत्थर का ही बना है।"

उन्नी जीवित थी तो भी पंडित जी दिल्ली दक्खन घूमते ही रहते थे।

जसोदा देवी की बात सुनी तो रोष के मारे पंडित जी अपने को वश में न रख सके, आंखों से आंसू बह निकले, जसोदा घबरा गईं। बताओ तो सही क्या बात है, मर्द होकर जी छोटा क्यों करते हैं आप।

तब जरा हिम्मत करके पंडित जी ने सारी कथा कह सुनाई। जसोदा देवी तो क्रोध के मारे पागल हो उठीं।

"मैं आज ही नूरपुर जाऊंगी। इसमें आपका क्या दोष, वे कौन होते हैं आपका अपमान करने वाले, यह चौरंगी, भाई है तो क्या, मैं संतों से भी बात करके आऊंगी।"

हजार रोकने पर भी जसोदा देवी संध्या की गाड़ी से नूरपुर चली गईं और सीधी डेरे पहुंची और जाते ही स्वामी जी पर बरस पड़ीं।

'आपने पंडित जी को हस्पताल से जवाब दे दिया महाराज जी सो क्यों ? उनका कोई दोष ?

महाराज चुप थे।

'आपने बिना सोचे समझे, चार आदमियों के फुसलाने से, उनके बहकावे में आकर उन्हें हस्पताल से निकाल बाहिर किया, वे कोई भूखे नंगे तो नहीं थे, या उन्हें रोटियों का टोटा था कि आपके द्वार पर आ पड़े, आपने स्वयं उन पर जोर डाला, बीसियों बार मैंने मजबूर किया, धर्म देव ने लाखों बार कहा, तब कहीं जाकर उन्होंने स्वीकार किया, और इस सबका फल क्या निकला, उनका दोष क्या था, उन्होंने कोई अनुचित बात की थी तो मुझे बताया होता आपने, आप तो संत हैं महात्मा हैं फिर भी सत्य को त्याग अन्याय का पक्ष लेते हैं। कहां है चौरंगीलाल, जरा मेरे सामने आकर कहे न, कि पंडित जी यदि आप रुपया जेब में डाल लें, उसे वे दिन भूल गए जब गाना सीखने के लिए छटपटाता था, कोई बात तक न पूछता था तो पंडित जी ही पल्ले से पैसे खर्च कर पं० प्रणव नाथ के पास लाहौर ले गए थे, हम तो इनके और इनके बाल बच्चों के लिए मरें और यह हमारे मान सम्मान का भी ख्याल न रक्खें, कहाँ है आपका थानेदार जो दूध के गिलास के भी दाम गिनता था। आपके डेरे से लोगों के कुत्ते बिल्ली दूध पी-पी जाएं और पंडित जी के लिए आपका दूध महँगा हो गया, और आपके यहाँ काम करने वाले जितने ईमानदार हैं मैं जानती हूँ, पिछली गुरु पूर्णिमा को धर्मदेव ने मुझे २०) भिजवाए तो मैंने त्रिभुवन को संभाल दिए कि जाती हुई ले लूँगी, मुझे याद न रही और वह ले उड़ा, आज देता है, धर्म देव की घड़ी उठाली, जाने किसके ५०) उठा लिए, ऐसे आदमी आपको अच्छे लगते हैं, ईमानदारों की यहाँ गुजर बसर नहीं। यह सब कुछ हस्पताल के लिए ही हुआ, मैं कहती हूँ भगवान करें आपका यह हस्पताल न चले, कभी न चले, जिसने हमें इतना दुःखी किया है और जसोदा देवी फूट-फूट कर रोने लगीं। स्वामी जी क्या कहकर उसे सांत्वना देते, चौरंगी लाल यह जान कर कि जसोदा आई हुई है, बाहिर ही से लौट गया था, वह डरता था तो केवल अपनी इस बहिन से ही, कभी कभार उसके घर में आने पर जब वह व्यर्थ में ही अपनी घर-

वाली को पीटने या धमकाने लगता तो ननद अपनी भौजाई की रक्षा में उससे भिड़ जाती, एक बार तो बहिन के हाथों वह पिट भी चुका था।

जसोदा देवी ने रो धो कर जब मन हल्का कर लिया तो स्वामी जी उठे, जसोदा के पास जाकर खड़े हो गए—

देखो बहिन इतना अधिक दुःख नहीं मनाना चाहिए, मानलो हम ही दोषी हैं, हमारी बुद्धि पर ही पर्दा पड़ गया, पंडित जी ही खूबसूरत लाल की बात मान जाते, पर भावी बड़ी बलवान है, होनी होकर रहती है, उसमें किसी का क्या दोष ? उठो, हाथ मुँह धोकर लस्सी पानी पियो और आराम करो फिर उधर घर की ओर चली जाना।

जसोदा देवी ने कुछ भी उत्तर न दिया, चुपचाप डेरे के बाहिर चली आईं। चौरंगी लाल का लड़का डेरे के बाहिर ही मिल गया, इच्छा न होते हुए भी वे घर चली गईं, चौरंगी लाल तब तक डेरे आ गया था। जसोदा देवी दोपहर तक ठहरीं, भावज ने ननद के दुःखी और तपे हुए मन को अपने मीठे व्यवहार से शीतल किया और संध्या को वे वापिस अपने गांव लौट आईं।

पंडित वसंतराज ने धर्म देव को पत्र लिखा और उसमें सारी घटना ज्यों की त्यों लिखकर दिल की भड़ास निकाल ली। पंडित जी का पत्र मिला तो धर्म देव का मन बड़ा व्याकुल हुआ, उसने गुरु देव को पत्र लिखना चाहा, पर जाने क्यों न लिख सका, कि इतने में स्वामी जी का पत्र उसे मिल गया।

जसोदा देवी के जाने के बाद स्वामी जी ने भवानीदास को बुलाकर धर्म देव को पत्र लिखवाया। वैसे तो स्वामी जी साधारण संस्कृत और भाषा पढ़े लिखे थे। दोपहर को सो कर उठते तो डाक का काम देखते थे, कभी भवानी दास तो कभी जानकी वल्लभ, या फिर जो भी पास हुआ उसी से पत्र पढ़वाते और जवाब भी लिखवाते। भवानी लिख रहा था और वे लिखवाते जाते थे, बहुत कुछ लिखवाने के बाद उन्होंने कहा, लिखो, पंडित जी खुद ही हस्पताल छोड़ कर चले गये, जाते हुए हमसे

मिलकर भी नहीं गए, इस पर भवानीदास चौंक उठा, महाराज, आपने स्वयं तो मुझे और चौरंगी लाल को जगा कर भेजा था कि हम पंडित जी का बिस्तर गोल करा आएं, अब आप लिखवा रहे हैं कि पंडित जी आपसे मिलकर भी नहीं गए—

'तू चुप रह भाई, तुम्हें क्या, जो चाहें हम लिखवाएं, हमारी नीति को तुम नहीं जानते ।'

भवानी दास चुप न रहता तो क्या करता, वह पत्र लिखता गया ।

धर्म देव ने जब यह लम्बा सा पत्र पढ़ा तो चित्त वृत्ति उलझन में पड़ गई, लिखा था—पंडित जी ने हमें बहुत दुःखी किया, हमारी एक न मानी, हम सब उनसे प्रार्थना करके थक गए, खूबसूरत लाल ने कहा अलाउंस लेकर हस्पताल का काम करें तो उन्होंने बहुत बुरा मनाया, वैसे उनका खर्च १७५।।=)।। महीना पड़ता था, पर्चियों के पैसे भी रखते रहे, क्या हम उमरी से भी गए बीते थे, इसी तरह की और कई बातें लिखी थीं पढ़ते-पढ़ते धर्म देव की सोचने विचारने की शक्ति कुंठित होने लगी, अंत में लिखा था, पत्र को पढ़कर फाड़ देना, जला डालना । धर्मदेव अपने गुरु महाराज को साक्षात भगवान ही मानता था, उनकी आज्ञा कैसे टाल सकता था, उसने चिट्ठी पढ़ी और फाड़ दी, जलती हुई अंगीठी में फेंक दी और अपने पिता के प्रति उसका मन ग्लानि से भरने लगा, परन्तु पत्र की एक बात पर उसका हृदय गुरु जी के प्रति विद्रोह कर उठता था—उन्होंने लिखा था, पहले तो पंडित जी हमारे पीछे-पीछे फिरते रहे, हमें कितना तंग किया, और पुराने वैद्य को जवाब दिलाया, यह सारी बात नितान्त असत्य थी, और गुरुदेव इसे कह रहे थे—वह हृदय को समझाता पर दिल ही तो है, नहीं मानता था ।

पं० बसंतराज हस्पताल से फारिग हुए तो दुबारा फिर अपना बिखरा शीराजा जोड़ने लगे—जो कड़िया तोड़ दी थीं उन्हें जोड़ने लगे, बम्बई जाते हुए दिल्ली धर्मदेव के पास गए, वह गुरु जी का पत्र पाकर बड़ा ही व्याकुल हो रहा था, पंडित जी आए तो उनकी सारी बातें सुनकर, गुरु जी के पत्र की बातों से मिलान किया, तो मन में कट कर रह गया, उसमें उसे गुरु जी की ज्यादती ही दिखाई दी, पर पंडित जी को यही कह कर उसने धीरज दिया—

'अच्छा ही हुआ पिता जी आप सस्ते में बच गए, यदि हस्पताल के प्रेम के चक्कर में कहीं से चन्दा वंदा इकट्ठा करके लाते, मान लीजिए, आपने हजार रुपया अपने प्रभाव से एकत्रित करके गुरुजी को दिया, वे कहते आप तो दो हजार लाए थे, आधाखुद डकार गए तो आप क्या करते ?

'मुझे तो बेटा, तुम्हारा और तुम्हारी माता का डर था, इस लिए मैं खुद छोड़कर नहीं आया।

'आप निश्चिन्त रहें, आपसे बात हो गई है, इसलिए अब कोई संशय नहीं रहा।'

पंडित जी हस्पताल के बन्धन से मुक्त होकर अपने लिखने लिखाने और, घर गृहस्थी के कामों में पड़ गए। छोटे लड़के भीमदेव के लिए कई जगह से सम्बन्ध आ रहे थे, एक जगह बात-चीत पक्की कर ली, बम्बई से लौटे तो शगन लेने की तिथि नियत करके धर्म देव, सीता नाथ (छोटा दामाद), विश्वनाथ (बड़ा दामाद) उर्मिला (छोटी लड़की) और प्रमिला (बड़ी लड़की) को भी बुला लिया। सीता नाथ और उर्मिला की गुरु जी में बहुत श्रद्धा भक्ति थी, इसलिए वे दोनों गुरु जी के दर्शन करने नरपुर में उतरे और तब घर आए।

भीमदेव, और धर्मदेव उनकी पत्नी और बच्चे भी आ गए थे। सम्बन्ध १५-२० मील दूर के एक गांव से ही था, लड़की कद की बहुत छोटी सुनी जाती थी, पर लड़की का पिता बड़ा मधुर भाषी और भला मानस, खानदान भी बुरा न था, स्थिति साधारण थी तो क्या आदमी तो मिलनसार और भले थे।

जसोदा देवी ने धर्म देव, बहू और भीमदेव को नूरपुर भेजा कि गुरु महाराज से समय पर पधारने की प्रार्थना कर आएं, भीमदेव तो उनका सबसे पक्का शिष्य इसलिए भी था कि उसके यज्ञोपवीत पर गुरु जी ने ही मन्त्र दीक्षा दी थी, उन्हीं के पास रहकर उसने मैट्रिक की परीक्षा भी पास की थी।

नूरपुर स्टेशन पर उतर कर जब सब तांगें में बैठ कर नगर की ओर जा रहे थे तो स्वामी जी मोटर में सवार मिल गए, वे देहरादून जा रहे थे, पर उस समय जाना स्थगित कर दिया और सब डेरे की ओर चल दिए। डेरे पहुँचते ही चौरंगी लाल भी आ गए, वे आज बड़े खुश थे क्योंकि उस दिन वहाँ के चुनाव क्षेत्र से कांग्रेस का उम्मीदवार जीत गया था, उन्होंने दिन रात उसकी सफलता के लिए एक कर दिया था, वे खुद भी नगर कांग्रेस के अधिकारी रह चुके थे, सन् २१ में जेल भी काट आए थे, वहीं की रेत भरी रोटियाँ और सब्जी खा खाकर गला भी खराब कर लाए थे।

धर्मदेव ने स्वामी जी से प्रार्थना की—भगवन् परसों भीमदेव का शगन आ लगा, आप अवश्य पधारिए, माता जी ने भी प्रार्थना की है।

'हमें बड़ी प्रसन्नता हुई यह शुभ समाचार सुनकर, परन्तु हम तो बाहर जाने का निश्चय कर चुके हैं, पत्र भी लिख चुके हैं, इस लिए मजबूरी है, आप चौरंगीलाल को ले जाइए, हमारा प्रतिनिधि वही है।

'मामा जी तो जायेंगे ही पर आपका जाना भी तो आवश्यक है, बिना आपके वहां हुए हमारे मन को आनन्द नहीं आएगा।

'तुम्हारी सच्ची भावना है तो हम चाहे यहाँ हों या बाहिर, तुम्हारे अंग संग ही है, हम तो संध्या की गाड़ी से चले जायेंगे—

धर्मदेव के मन को संदेह हुआ, शायद गुरु जी के मन में पिता जी के प्रति अब भी मैल शेष है, इसीलिए बाहिर जाने का प्रोग्राम बना लिया, कुछ भी हो वह गुरु जी के बाहिर जाने के निश्चय को न बदल सका, तब अन्य बातें होती रहीं, धर्मदेव की पत्नी तब तक मामा के घर चली गई थी, धर्मदेव ने अपनी जवान हो रही लड़की अभय कुमारी के संबंध के बारे में बात छेड़ी, महाराज जी की एक विधवा चेली थी; बड़ी नेक और धर्म भीरु, उसका एक मात्र लड़का, सुन्दर और जवान, अभी कौलेज में पढ़ता था, उस से सम्बन्ध करने की बात धर्मदेव ने सोच रक्खी थी, उसी का जिक्र किया तो स्वामी जी बोले—

'नहीं भाई वह ठीक नहीं, तुम खूबसूरत लाल के बड़े लड़के से संबंध कर दो, लड़का सुपात्र है और घर बार तो तुम जानते हो बहुत ठीक-ठाक है, थानेदार का लड़का यदि सोना है तो दूसरा लड़का मिट्टी, कोई मुकाबिला ही नहीं दोनों में, समझे, खूबसूरत लाल को पत्र लिख देना वह हमें पूछेगा तो फिर हम सब बात तय करा देंगे।

धर्मदेव जरा चौंका पर गुरु जी जो भी सोचेंगे और करेंगे, वह कल्याण के लिए ही है, पर कहीं न कहीं मन के किसी कोने में कोई कह उठता था,—सावधान यह भी खूबसूरत लाल के सामने तुम्हारे पिता जी को नीचा दिखाने की चाल न हो, लेकिन धर्मदेव ने मन की इस आवाज को वहीं वहीं का दबा दिया, सद्गुरु देव के निश्चय में मन सशंय युक्त क्यों हो, समय पाकर उसने खूबसूरत लाल को बड़ी अनुनय विनय और आदर सहित पत्र लिखा कि यदि उन्हें यह सम्बंध करना स्वीकार हो तो इसमें गुरु जी भी प्रसन्न होंगे, और यदि उनकी ओर से हां हो जाए तब फिर वह अपने पिता जी से इस शुभ कार्य में हाथ बढ़ाने की प्रार्थना करेगा क्योंकि सब कार्य तो वृद्ध गुरुजनों द्वारा ही होता है।

खूबसूरत लाल चूक गए, उन्होंने अपने थानेदारी के घमंड में पत्र

का उत्तर देना ही अपनी शान के खिलाफ समझा, नहीं तो पंडित वसंतराज को झुकना ही पड़ता, या संभव है पिता पुत्र में मन मुटाव हो जाता, परन्तु यह सब कुछ न हुआ और स्वामी जी की यह चाल भी कारगर न हुई। महीनों प्रतीक्षा के बाद भी खूबसूरतलाल का उत्तर न आया तो गुरु जी के दिल्ली पधारने पर धर्म देव ने शिकायत की—

'देखिए न महाराज जी, आपके कहने पर मैंने खूबसूरत लाल को पत्र लिखा, उनकी मिन्नत समाजत की, नीचा हुआ, फिर भी उसने कोई उत्तर न दिया।'

'यह तो अच्छा हुआ धर्मदेव, वह लड़का तो किसी काम का नहीं, वह तो वही है जो कितना अर्से रोगी रहा, व्यर्थ में लड़की का जीवन संकट में पड़ता, यह तो भगवान ने बचा दिया, हम तुम्हें कोई और लड़का तलाश कर देंगे। गुरु जी ने जैसे उसके आंसू पोंछे—

धर्मदेव हैरान था, एक क्षण में स्वर्ण सा लड़का मिट्टी से भी बुरा हो गया और उनकी बीमारी की बात गुरु जी तब भी जानते थे, उसका मन और भी खट्टा हो गया।

संध्या को गुरु जी तो देहरादून के लिए चल दिए—गाड़ी में धर्म-देव भीम देव और बच्चे भी साथ बैठ गए, क्योंकि उन्हें तो अगले स्टेशन पर उतर कर गांव जाना था और गुरु जी को उसी गाड़ी से लुधियाने पहुँचकर हरिद्वार मेल पकड़नी थी।

गांव का स्टेशन आ गया तो गुरु जी के चरण छूकर सब विदा हुए पर धर्मदेव तब तक बैठा रहा जब तक गाड़ी चल न पड़ी। इतने में ही सर्दारा सिंह ने आकर उनके चरण छुए, वह खुशी में था इसी-लिए डट के पी भी रखी थी, चुनाव में जीत गया था और स्वामी जी का अशीर्वाद भी उसका सहायक था क्योंकि डाक्टर जानकी वल्लभ, और चौरंगीलाल उसके हक में प्रचार कर रहे थे, नहीं तो राजनीति का क, ख, भी स्वामी जी न जानते थे, इसकी जरूरत भी न थी, उनका

काम यों ही चल रहा था।

गाड़ी चल दी तो धर्म देव भी उतर आया और प्रणाम करके घर पहुँच गया।

नियत समय पर भीम देव के लिए शगुन लेकर पंडित खुशहाल चंद आगए, उनके साथ उनका छोटा लड़का भी था, उसी गाड़ी से चौरंगीलाल, उनका बाजा, तबला, उनके लड़के, उनकी पत्नी, उनकी पुत्रियाँ भी आईं। घर में खुशी की लहर दौड़ गई। गाना बजाना हुआ, खाना पिलाना हुआ और शुभ मुहूर्त में सगाई की कार्यवाही आरम्भ हुई। सब बिरादरी सज धज कर बैठ गई।

तब खुशहाल चंद थाली में लड्डू, संतरे, अमरूद और केले सजाकर ले आए और बैठ गए, एक थाल में एक-एक रुपये के २१ नोट भी रक्खे थे जैसे मोर ने नाचने के लिए पंख फैलाए हों, उस पर रंगदार रेशमी रूमाल सजा रखा था।

गणेश पूजन शुरू हुआ तो आते ही चौरंगीलाल ने कहा 'पाखंडाय नमः, आडम्बराय नमः, उसकी यह बेतुकी सब को बुरी लगी, परन्तु उसके उग्र स्वभाव से सभी परिचित थे कोई कुछ न बोला, अपनी बात का असर होते न देखकर वह खिसियाना तो हुआ पर खम्बा नोचने से भी बाज न आया, उसने भीमदेव के कान में कुछ कह दिया, भीमदेव बचपन में उससे गाना सीखता रहा था परन्तु उसकी मारपीट से तंग आकर क्योंकि वह सिखाता कम था और पीटता अधिक था, इस लिए भीमदेव अधकचरा ही उठ आया था, परन्तु बचपन में पास रहा था इसलिए दोनों में स्नेह बना हुआ था, और भीमदेव की खिचावट मामा की ओर ही थी, इसके अतिरिक्त चौरंगी लाल अपने को सुधार वादी मानता था, माँ बाप के शासन से तंग आने वाले बच्चों को उसकी बातें भातीं थीं।

पं० खुशहाल चंद ने २१) के नोटों वाला थाल उठा कर जब भीम-देव की झोली में डालना चाहा तो चौरंगीलाल बोल उठा,—

'नहीं, नहीं, पंडित जी बस, 'एक रुपया, जयादह शगन नहीं चाहिए।

परन्तु शगन के रुपए झोली में पड़ चुके थे, मामा के स्वर में भीमदेव ने भी कहा, नहीं, नहीं—जैसे मामा जी कहें वैसा ही करो। और वह रुपए निकालकर वापिस करने हो वाला था, कि चाचा हरियाराम ने उसे मना किया, 'नहीं बेटा, शगुन के रुपए लौटाए नहीं जाते, रहने दो।

भीमदेव इसका मतलब कुछ और ही समझा, इतने में मिलनी होने लगी, पंडित जी ने पहले चौरंगी लाल को ही मिलनी दिलानी चाही, वह न, न करता ही रहा, मिल लिए न पंडित जी, मिलन मन का ही होता है, रुपए से नहीं, परन्तु बिरादरी ने उसे १) दिला ही दिया, तब पंडित जी धर्मदेव और सीतानाथ को मिलनी दी गई—मिलनी होती रही तो भीमदेव के मन में जाने क्या तूफान उठने लगा, बड़ी बहिन उस का रुख देख रही थी, वहीं से उसे चुप रहने का इशारा किया, जब वह उठकर भीतर गया तो भभक उठा, । मामा की चाल काम कर गई, उसने शगन बगन उठा के जमीन पर पटक दिया । सब घबराए, और वह चिल्लाने लगा—इन रुपयों से तुम्हारा पेट भर जाएगा, लो, उठालो, लूट लो सब, यों ही दुनिया मरती जाती है, कहो तो अभी पांच सौ ढेरी कर सकता हूँ—

वह नया-नया कपड़े के मिल के डिपो पर काम करने लगा था, बड़ा मान था उसे अपनी कमाई पर, सभी हैरान थे, यह क्या हो रहा है कि पंडित बसंतराज सब बात भांप गए, उन्होंने चौरंगी को बुलाया, तब तक खुशहाल चंद और बिरादरी के सब लोग जा चुके थे लड्डू बंट चुके थे, मुँह मीठा हुआ तो फिर कौन वहां ठहरे । चौरंगी लड्डू बांट कर आया तो पंडित जी ने पूछा ।

'तुम क्या चाहते हो भाई, खुल के कहो ?

'उनके रुपए वापिस कर दिए जाएं ।

'यह लो २१) और दे आओ वापिस, पंडित जी ने रुपए उसके हाथ में रख दिए, और वह धर्मदेव को साथ लेकर उन्हें रुपए वापिस कर आया, उन्होंने भी चुपचाप रुपए लेकर जेब में डाल लिए ।

संध्या के समय जब मेहमान गाड़ी चढ़ गए तो सब ने आए हुए फल और मिठाई खोलनी शुरू की। संतरे खट्टे, शायद छः आने दर्जन के, वैसे ही सड़े हुए केले और अमरूद, भीमदेव की सब मखौल कर रहे थे, भई ससुराल के संतरे तो बहुत मीठे हैं, भई केले खाकर देखो सीधे बम्बई से मंगाए गए हैं।

तुम केले को कह रहे हो अमरूद तो कल ही अलाहाबाद से आर्डर पर आए हैं, जितने मुँह उतनी बातें, जसोदा देवी देखने में तो बड़ी खुश थीं पर उनका मन आगत भय से जैसे काँप रहा हो, वह अन्दर की कोठरी में स्वामी जी की मूर्ति के पास खड़ी प्रार्थना कर रही थी। गुरुदेव आप ही रक्षा करने वाले हैं। उन्हें पिछली रात स्वप्न हुआ था, उनकी सास ने स्वप्न में कहा था; यह सगाई मत स्वीकार करो, तुम्हें बुरी बैठेगी, पंडित जी का निरादर होगा, स्वप्न में ही जसोदा देवी ने कहा, अब तो माता जी बात पक्की हो गई है, कल को शगुन हो जाएगा, तो उनकी सास ने कहा था, मैं मुँह पर हाथ फेर कर कहती हूँ, यह काम सिरे न चढ़ेगा, कभी न चढ़ेगा, और जसोदा देवी हड़बड़ा कर उठ बैठी थीं सबेरे जगीं तो काम काज में लग गईं, और जब शगुन का काम हो गया, जरा सांस लेने की फुरसत हुई, तो धर्मदेव से स्वप्न की सारी बात सुनाई, इतने में पंडित जी भी आ गए—कहने लगे, 'हमें तो ध्यान ही न रहा, आज रात्रि को चन्द्र ग्रहण है, शगन तो हमने ले लिया भगवान भली करें—मेरा मन भी उनके व्यवहार से प्रसन्न न हुआ, 'उनकी बात सुनकर जसोदा देवी का मन और भी काँप उठा और उन्होंने स्वप्न की बात पंडित जी को भी सुना दी और यह भी बताया कि जिस दिन

हस्पताल के सम्बन्ध में उनके साथ अन्याय किया गया था उससे पहली रात भी ऐसा ही स्वप्न उन्हें आया था।

जसोदा देवी का मन भजन भक्ति में खूब लगता था, रात्रि को जब सब सो जाते तो वे उठ बैठतीं और घंटों माला जपतीं उनके स्वप्न प्रायः सच्चे ही होते थे, पंडित जी हर काम उनसे पूछ कर किया करते थे, इस लिए वे सोच में पड़ गए। कुछ क्षण चुप रहकर उन्होंने एक सुझाव रक्खा—

लड़की के लिए झोली गुथली, चुनरी और परांदे अभी न भेजे जाएं—

'वह सब तो महाराज जी के आने पर ही हम उनकी सम्मपति से भेजेंगे, 'जसोदा देवी ने अपनी तरफ से नया सुझाव जोड़ दिया।'

'ठीक कहती हो तुम, पर इतने में एक काम करो, धर्मदेव और बहू उड़दपुर में जाएं, बहू लड़की को भी देख भाल लेंगी, और धर्मदेव लड़की के बाप से मेरी तरफ से कह आएगा कि हम और तो कुछ नहीं चाहते, ब्याहने के समय बारात में जो चार अतिथि आएंगे, उनकी आव भगत सेवा सत्कार अच्छी तरह कर दें, सगाई का सा व्यवहार न करें, चीजें अच्छी हों भले ही कम हों, सफाई और सादगी की हमें जरूरत है—

'यदि वे बहू को या लड़के को शगन दें तो वे भी लड़की को अवश्य शगन देकर आएं, खाली हाथ लड़की को न देखें—

बात तय हो गई, तीन चार दिन बाद धर्मदेव और प्रेमवती उड़दपुर को चल दिए—वहीं प्रेमवती की ननिहाल भी थी, और उसके मायके की एक सहेली भी वहीं रहती थी, उसने कई बार आने का आग्रह किया था, सो उन्हीं के यहां जाकर ठहरे, मामा तो प्रेमवती के मर चुके थे, मामी और उसका लड़का मंगतराम गांव में रहते थे, उनसे खड़े-खड़े मिल आना तय कर लिया। प्रेमवती जब उदड़पुर में अपनी सहेली के घर के करीब पहुँची तो उसकी क्रेप सोल की जूती गली के ऊबड़ खाबड़ कंकड़ पत्थरों से मित्रता न कर सकी, वे गिर गई पांव में सख्त मोच आ

गई। लंगड़ाती हुई जब सहेली के घर पहुँची तो वे हैरान हुईं, उसके पति महाशय वेदप्रकाश ने दवाई मंगाई, सेंक किया, तब कहीं जाके जरा आराम हुआ।

प्रेमवती और उसकी सहेली तो लड़की को देखने चली गईं और धर्मदेव पं० खुशहाल चन्द के औषधालय में उनसे मिले। पंडित खुशहाल चन्द से आध घन्टा बातें होती रहीं, वे राधा स्वामी मत की व्यास वाली गुरु प्रणाली के शिष्य थे।

धर्मदेव का माथा ठनका, इनसे हमारी कैसे निभेगी, हम कट्टर सनातन धर्मी और यह राधास्वामी के शिष्य। बातों-बातों में धर्मदेव ने पिता जी का संदेशा भी सुना दिया और यह भी बता दिया कि वे किसी दिन पिता जी से मिलकर उन्हें यह विश्वास दिला दें कि जैसा वे चाहेंगे वैसा ही व्यवहार किया जाएगा। आध घंटे तक बैठे रहने पर भी पं० खुशहाल चंद या उसके पुत्र ने धर्मदेव को जल पानी तक न पूछा न कोई सेवा सत्कार और जब दोनों पति पत्नि वापिस आने लगे तो कोई मिलनी न शगुन, अब वे आँखों ही-आँखों में एक दूसरे से पूछने लगे। अब क्या करें, लड़की को कुछ दें या न, पर दोनों हैरान थे, उनकी तरफ से कुछ हो तब न वे लड़की के लिए कुछ भेंट दें। बातों-बातों में टांगा आ गया दोनों उसमें सवार हो गए, मामी ने प्रेमवती को चार रुपए सगन के भेंट किए। उसने दो दो रुपए भाभी के पोते पोती को दिए, पं० खुशहालचंद और उनकी पत्नी सामने ही खड़े थे, देखकर भी उन्हें न सूझी तो दोनों तांगे में बैठ गए और हाथ जोड़ प्रणाम किया और तांगा हवा से बातें करने लगा। शाम की गाड़ी से गांव पहुंचे तो प्रेमवती को पांव की चोट ठंडी होकर दर्द करने लगी, मुश्किल से वह स्टेशन से घर तक पहुंची, रास्ते में कई बार उसे उठाकर ही धर्मदेव को चलना पड़ा। घर पहुंचकर डाक्टर को बुलाया और कुछ उपचार किया पर पांव की मोच दो महीने बाद दिल्ली आकर ही ठीक हुई।

पंडित बसंतराज और जसोदा देवी ने जब वहां का सब हाल सुना

तो मन बेहद खट्टा हो गया, लड़की कद की बहुत छोटी और उनका व्यवहार नितान्तरूखा और निराशा जनक था। भीमदेव का मन भी कुछ कुछ उनके व्यवहार से उदासीन हो चला था, धर्मदेव के दिल्ली वापिस चले आने के बाद, पं० खुशहालचंद अपने भावी समधी पं० वसँत-राज से न मिलकर भीमदेव को जाकर मिले और उसे ही गांठने लगे, वहां दाल गलती न देखी तो डेरे में जाकर स्वामी जी की शरणली—रोए, गिड़गिड़ाए, कहने लगे—महाराज आपकी शरण हूँ, उनके यहां से गुथली और मौली महँदी नहीं आई, क्या करूं ? इसका सीधा सरल उपाय तो यह था कि स्वामी जी पंडित जी को बुलवा लेते और वहीं दो टूक निश्चय करा देते, पर उन्हें तो जैसे अवसर मिल गया, खुशहाल चंद को चौरंगी लाल के घर भेज दिया, वह बेचारा उसके पास जाकर रोया गिड़गिड़ाया, चौरंगीलाल उसे लेकर डेरे चला आया, और तब महाराज की आज्ञा से चौरंगी अपनी बहिन के गांव चला आया । उसे मालूम था, भीमदेव यहीं आया हुआ है, काम पर नहीं गया। आते ही उसने किसी से बात न की, भीमदेव को उठाया और साथ ले चला, भीमदेव के पास सायकिल थी, वह चल पड़ा। रास्ते में उसने भीमदेव को डराया धमकाया और उससे शपथ ली, कि वह खुशहाल चंद की लड़की से ही विवाह करेगा, भले ही माता पिता माने या न मानें, यदि उसने ऐसा न किया तो वह कुए में छलांग लगाकर प्राण दे देगा। डरता क्या न करता, बेचारा अभी कच्ची बुद्धि का नौजवाम छोकरा हां हां करता रहा। जब उसे निश्चय हो गया कि भीमदेव अब डोलने का नहीं तो उसने नूरपुर की राहली और भीमदेव अपनी मिल की ओर चला गया।

जसोदा और पंडित जी दोपहर तक दोनों की राह देखते रहे, भोजन पड़ा ठंडा हो रहा था। तीसरे चौथे दिन खुशहाल चंद फिर नूरपुर स्वामी जी के पास गया, तो स्वामी जी ने आदमी भेज कर भीमदेव को बुला लिया, चौरंगी भी मौजूद था।

'कहो तुम्हारा क्या इरादा है, स्वामी जी बोले।

जैसी आज्ञा हो महाराज ?

भीम ने उत्तर दिया।

हमारी क्या आज्ञा है, तुम्हारे माता पिता इस गरीब ब्राह्मण का दुःखी कर रहे हैं।'अब जानते हो तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है ?

'क्या कर्त्तव्य है महाराज ?

बताएं कर्त्तव्य, परीक्षा में पूरे उतरोगे, देख लो ऐसा न हो कि माता पिता की दुरासीस से डर जाओ।

'आप रक्षक हैं तो माता पिता की बददुआ भी मेरा क्या बिगाड़ लेगी।

'तो प्रतिज्ञा करो, पार्वती की तरह, जन्म कोटिसत रगरी हमारी, वरौं संभु न तु रहौं कुंआरी। बीच में ही खुशहाल चंद बोल पड़ा, मेरी लड़की भी यही पाठ किया करती है गुरुदेव।'

'बीच में क्यों फटे पड़ते हो, खुशहाल चंद जी।

चौरंगी ने उसे रोका।

स्वामी जी कह रहे थे—'हां तो प्रतिज्ञा करो कि खुशहाल चंद की लड़की से ही विवाह करोगे, डरो मत, यदि पंडित जी न माने तो हम अपने पास से जेवर ले जाकर तुम्हारा विवाह कर देंगे' उनके पास पाकिस्तान की गड़बड़ के जमाने में धर्मदेव अपनी पत्नी के कुछ जेवर अमानत रख गया था।

'अच्छा महाराज।'

इतने में चौरंगी बोल उठा, 'कोई न जाए मैं अपने बेटे को ब्याह के लाऊंगा।,

'नहीं मामा जी मैं आपको क्यों बदनाम होने दूंगा, मैं आपको या महाराज जी किसी को भी साथ न लूंगा, अपने मिल के साथियों की बारात सजा कर ले आऊंगा, बोलिए किस दिन आऊं पंडित जी,'' भीमदेव ने पं० खुशहाल चंद से प्रश्न किया।

खुशहाल चंद सोच में पड़ गए। सोच कर बोले—

अपने बड़े पुत्र से सलाह करके जवाब दूंगा। भीमदेव भी तड़प उठा, सोचने लगा, यह अपने बेटे से सलाह करेगा और मैं माता पिता से पूछ भी नहीं सकता, पर वह चुप रहा, मजलिस बर्खास्त हो गई। भीम देव रात भर सोचता रहा यदि मेरे कारण मामा जी और माता पिता में मन मुटाव हो गया तो आयु भर मेल न हो सकेगा, क्यों न मामा जी और पिता जी से मिल कर बात चीत कर लें, यही सोचता सोचता वह सो गया।

उधर पंडित वसंतराज और जसोदा देवी को सब समाचार मिल रहे थे, नूरपुर उनके गांव से चार कोस दूर ही था कौन आया कौन गया सब खबर मिलती रहती थी। वे यह जानकर दुःखी हो रहे थे कि खुश-हाल चंद उनके पास न आकर वहां क्या करने जाता है, और लड़का अपना होकर भी पराया हुआ जा रहा है। भीमदेव प्रातः उठा, मामा को मनाया, भाभी को भी राजी किया और दोनों को साथ लेकर गांव आगया। चौरंगी ने आते ही बहिन को नमस्ते कही, उसने आशीर्वाद दिया, भीमदेव मामा के लिए दूध गर्म करने लगा, तो चौरंगी ने पं० जी से कहा—मैं आपसे एक बात करने आया हूं।

'एक नहीं बीस बातें कहिए।' पंडित वसंतराज ने धीरज से उत्तर दिया।

जसोदा देवी बीच में ही बोल पड़ीं। "चौरंगी भाई, लड़के की सगाई को छोड़कर और जो बात चाहे करना, सगाई की बात हम नहीं सुनेंगे।

क्यों ?

'हम यह सगाई अब नहीं रखेंगे ?

आखिर क्यों नहीं रखेंगे, कोई कारण ?

'हमारी इच्छा, इसमें बहस की क्या बात है ?

'एक आदमी को कैसे खराब कर सकते हैं आप, यह भी अच्छी दिल्लगी ठहरी," और वह तेज होने लगा, चढ़ता चला गया।

मैं कहता हूं तुम्हें इस बात का जवाब देना पड़ेगा, यह कोई भले

मानसों के काम हैं, आपने समझ क्या रक्खा है, अब मुकाबिले पर मैं हूं खुशहाल चंद नहीं, सब को सीधा कर दूंगा, तू समझती क्या है अपने को प्याज़ की फूक की तरह निचोड़ के रख दूंगा।

चौरंगीलाल की बात सुनकर पंडित जी तो काठ मारे से रह गए पर जसोदा की आंखें चढ़ गईं, क्रोध से नथने फड़कने लगे, चौरंगी की पत्नि मुआमले को ताड़ गईं, वे ननद जी को पकड़कर भीतर ले गईं उनके हाथ पांव पड़ने लगीं।

'आप क्रोध में न आइए बीबी जी, यह तो बोल बिगाड़ हैं—आप शाँति कीजिए।

जसोदा देवी अपना हाथ छुड़ा रही थीं, चौरंगी लाल क्रोध में आपे से बाहिर हो रहा था पर बहिन के स्वभाव को जानता था, भीतर रहता तो बहिन जरुर उसकी मुरम्मत कर देती, और वह हाथ न उठा सकता, इसलिए पंडित जी से बोला—आइए बाहिर तो निकलिए-आप को मजा चखाऊँ।

चल भई चल बाहिर ही चल, जो तेरे जी में आए करले, कसर न छोड़ना।

'आपने जेल और पुलिस नहीं देखी अभी, मैं पंचायत का मेम्बर हूँ, बड़ों-बड़ों को सीधा कर दिया मैंने—

और यह कह कर वह पण्डित जी का हाथ पकड़ कर बाहिर बैठक के चबूतरे पर ले आया, जसोदा देवी का उसे डर न था, क्योंकि ससुराल का गाँव, अपना मुहल्ला, वह कैसे बाहिर आ सकती थी, इधर यह सब शोर सुनकर गांव भर के लोग इकट्ठे हो गए थे—सबके सब पण्डित जी का मान करते थे। परन्तु घर की लड़ाई में कौन बीच में पड़े, सब खड़े तमाशा देखने लगे, कि इतने में चौरंगी लाल चबूतरे पर खड़ा होकर चिल्लाने लगा—

'देखो लोगों, यह भूखा सड़ा ब्राह्मण (इशारा पंडित वसंतराज की ओर था) खुशहाल चन्द से एक हजार रुपया माँगता है, कहता है तभी

रिश्ता राखूँगा—अब तो पंचायत में इसका फैसला होगा, और मैं इस पंडित को कहीं का न छोड़ूँगा।

पंडित जी बेबस थे, जैसे सिंह के पंजे में गाय—क्रोध में काँपे और इतना भर कहा—जा निकल जा यहाँ से मेरे मकान पर आकर मेरा अपमान करते तुझे लज्जा नहीं आती, "और उनकी आँखों से आँसू बह निकले, उन्होंने एक वृहत्थड़ भीमदेव की पीठ पर दे मारी—

'दुष्ट, तेरे कारण ही मेरा अपमान हुआ। इसीलिए तू इस राक्षस को मेरे सिर पर चढ़ा लाया था।

भीमदेव की आँखों में पिता की यह दशा देखकर खून उतर आया। उसका जी चाहा, मामा की गर्दन नोच ले। पर इतने में चौरंगी ने उसका हाथ पकड़ खींच लिया। 'बेवकूफ गधे इन मूजियों के हाथों अपनी जिन्दगी बरबाद करेगा, चल मेरे साथ, 'और उसे धक्का देकर आगे कर लिया, मामा, मामी और भानजा तीनों चल पड़े। नूरपुर पहुँचते ही चौरंगी ने कहा, भीमदेव, अभी इसी क्षण निश्चय करो तुम हमारे साथ होकर उड़दपुर शादी कर रहे हो या हमें छोड़कर अपने पापी माता पिता का साथ दे रहे हो।

"बात बिगड़ गई मामा जी, मैंने तो सुलझान का यत्न किया पर वह उलझ गई, जरा सोचने का मौका दीजिए"—

'नहीं अभी तत्काल निश्चय करो और बताओ, इधर या उधर'

'बच्चों का मन खराब हो रहा है, जरा धीरज कीजिए, हर काम में जल्द बाजी अच्छी नहीं—मामी बोल उठीं'—

हाँ पिता जी, भाई साहिब को सोचने दीजिए—बड़ी लड़की ने कहा—

'चुप रहो, रंडियों—वरना प्राण ले लूँगा —और वे चुप हो रहीं। चौरंगी चिलम भरने दालान की ओर गया तो भीमदेव जंगल पानी के बहाने अपना पीछा छुड़ा कर भाग खड़ा हुआ, अकेले में बैठ कर खूब रोया तब अपनी मिल की राह ली।

चौरंगी लाल हाथ मुंह धो कर डेरे गया और स्वामी जी से शिकायत की—

'देख लिया बहिन को भी और बहनोई को भी, मैं मन में कुछ सकझ कर ही गया था, मेरा भी उन पर मान था, घर जाते ही यसोदा मुझे गालियाँ बकने लगी, मैंने लाख कहा, बहिन मेरी भी तो सुन, पर वहाँ कौन सुनता है, फिर मुझे भी ताव आ गया, आखिर इन्सान ही तो हूँ, पत्थर नहीं, बस फिर चढ़ गई मुझे भी, जो मुंह में आया कह डाला।"

और स्वामी जी ने भाई की सब बात अक्षारशः सत्य मान ली, उनका विश्वास था कि चौरंगी बोल बिगाड़ तो है, मुंह फट भी, पर न तो मन का मैला ही है और न झूठी कहता है।

दूसरे दिन संक्रान्ति थी। पंडित जी और यसोदा देवी प्रायः हर संक्रान्ति का नए महीने का नाम सुनने स्मामी जी के पास जाया करते थे। अब कि जाना और भी जरुरी था। संध्या की गाड़ी से नरपुर पहुँचे तो स्टेशन के रास्ते में ही स्वामी जी मिल गए और पूछा—आप किस लिए आए हैं पंडित जी,

प्रातः महीने का नाम सुनने।

तो डेरे चलिए पर महीने का नाम सुनने और सुनाने के अतिरिक्त हम कोई बात न सुनेंगे और न करेंगे।

'जैसी आज्ञा—

पण्डित जी और जसोदा देवी डेरे की ओर चल पड़े और स्वामी जी हस्पताल को। उनका नियम था प्रातः संध्या वे हस्पताल जरुर जाया करते थे। पंडित जी और जसोदा देवी हस्पताल की घटना के बाद भी स्वामी जी के चरणों में श्रद्धा बनाए हुए थे क्योंकि वे गुरु थे, गुरु बिना गति नहीं, इस कथन पर दृढ़ थे। स्टेशन से आते तो हस्पताल की ओर घृणा से पीठ कर लेते पर डेरा उन्हें उसी तरह प्रिय था, वे जानते थे कि महाराज के प्राण तो डेरे में $\frac{1}{4}$ और हस्पताल में $\frac{3}{4}$ रहते हैं।

काफ़ी रात बीते स्वामी जी खा पीकर ऊपर आए और चारपाई पर पड़ गए, पण्डित जी तो जल्दी ही सो गए थे पर यसोदा देवी दबे पाँव स्वामी जी के पास आ गई और धीरे-धीरे अपनी राम कहानी कह सुनाई और अपना जी हल्का कर लिया। स्वामी जी ने कुछ सुनी कुछ न सुनी ऐसा ही भाव दिखा रहे थे, पर सुनी सब की सब, पर उनमें से कुछ का भी विश्वास वे शायद ही कर सके, क्योंकि भाई की बात पहिले सुन चुके थे और वह सत्य बोलता था, और बहिन तो उस दिन उनसे लड़ झगड़ कर भी गई थी। लड़ तो भाई भी लेता था, कभी-कभी स्वामी जी के हाथों पिटता भी था, फिर भी भाई था। और कदम-कदम पर उस की आवश्यकता पड़ती थी, इसी जरुरत के मोह पर स्वामी जी ने सत्य और न्याय को कुर्बान कर दिया। बहिन खुश थी कि अपनी सब बात सच-सच गुरु देव को सुना आई है। गुरु देव नें ठंडी सांस ली कि आफ़त टली।

संक्रांति करके, नाम सुना और प्रसाद लेकर पण्डित जी घर आ गए, पर उन्होंने धर्मदेव को पत्र द्वारा सारी घटना की सूचना दे दी थी, अपने हृदय का दुःख रोया था, पत्र में जैसे उनके आंसू ही पिरोए गए थे। धर्मदेव पत्र पढ़ कर छटपटाया, व्याकुल हुआ, पागलों सा घूमता रहा, वह तो रात की गाड़ी चढ़ जाता, पिता के हृदय को सांत्वना देता और मामा से कैफियत मांगता, उसे दो हाथ दिखाता, उसे छुट्टी न मिल रही थी, उसने अपने पिता जी को पत्र लिखा, मुझे दफ्तर में तार दीजिए तब आ सकूँगा। पण्डित जी का मन तब तक क़दरे शाँत हो चुका था, उन्होंने नूरपुर से आते ही पत्र पढ़ा और उत्तर दिया, मन को शान्त राखो, घबराओ नहीं, अब मेरा चित्त-स्थिर है, दो एक दिन में आऊँगा।

संक्रान्ति के अगले रोज स्वामी जी कानपुर के लिए रवाना हो गए। हस्पताल के पास ही गुरुद्वारा बनाने की सलाह थी, उसी का नकशा तैयार हो रहा था। उसे लाना था और बड़े गुरु महाराज जी की

प्रस्तर मूर्ति भी बनवानी थी, इसी हेतु वे वहां जा रहे थे, जाते हुए दिल्ली भी उतर पड़े ।

रात्रि के दस बजे के लगभग धर्मदेव रघुवर नारायण के पास बैठा उसे अपनी राम कहानी सुना ही रहा था कि प्रेमवती बुलाने आ गई 'घर चलिए' न महाराज जी आए हैं ।

रघुवर नारायण और धर्म देव जल्दी से उठे, रघुवर तो महाराज की भेंट के लिए वर्फी लेने चला गया और धर्म देव, पत्नी के साथ घर आया । स्वामी जी को प्रणाम किया, बाजार से दूध ले आया, प्रेमवती ने झट भोजन तैयार किया, भोजन प्रसाद पा चुके तो रघुवर भी आ गया, तब बातें होने लगी । स्वामी जी ने धर्म देव को धीरज दिलासा देते हुए कहा ।

'घबराने की कोई बात नहीं, सब मुआमला अपने आप शान्त हो जाएगा । चौरंगी को तो तुम जानते ही हो, वाणी का जरुर कठोर और रुखा पर मन का मैला नहीं, जसोदा को भी तो चाहिए था, उसकी बात तो सुन लेती ।'

'कुछ भी हो महाराज जी, चौरंगी लाल को सरे बाजार पण्डित जी का अपमान नहीं करना चाहिए था ।' सुना है उसने बड़ा ही हल्ला किया और गालियां तक दीं । धर्म देव ने बात बढ़ाई ।

नहीं यह बात नहीं स्वामी जी बोले—चौरंगी लाल ने पण्डित जी का अपमान कभी नहीं किया, बल्कि जसोदा और पण्डित जी ने ही घर आए चौरंगी का अनादर किया, वह सच्चा आदमी है, तुम पण्डित जी की बात का विश्वास करते हो—एक ओर की बात सुनकर ही तुम दुखी होने लगे, चौरंगी की बात भी सुन लेते—

मुझे तो ऐसा दीखता है महाराज जी खुशहाल चन्द, नूरपुर में चौरंगी के पास आकर रोया पीटा होगा बस वह चढ़ गया, उसकी तो आदत ही है, पर खुशहाल चन्द को चाहिए था वह सीधा पण्डित जी के पास जा कर बात करता, उसे नूरपुर नहीं आना चाहिए था, यदि आया

ही था तो चौरंगी लाल से न मिल कर आपसे मिलता, आप पण्डित जी को बुला लेते तो बात न बिगड़ती।'

बिगड़ने वाली बिगड़ ही जाती है, और तुम यों ही मन में उधेड़ बुन कर रहे हो, हम ने तो सुना नहीं न हमें पता ही है कि खुशहाल चन्द नूरपुर आया था, बल्कि यह जरुर सुना है कि पण्डित जी ने उसे कोई खत लिखा था।

'यह नहीं हो सकता भगवन् मेरा मन कहता है, वहां न आया होगा तो चौरंगी मामा से कहीं न कहीं मिला जरूर है, वर्ना वह क्यों भड़कता

इतने में रघुवर नारायण जो अब तक खामोश बैठा सुन रहा था महाराज जी से प्रार्थना करने लगा।

'यह झगड़ा निपट जाए तो अच्छा है, सम्बधियों का मेल जोल में ही लाभ है, किसी तरह यह मिट जाए कुछ ऐसा ही कीजिए महाराज जी।

'हमारे करने से क्या होगा भाई रघुवर, हम तो किसी बात में बखल नहीं देते, न हमें इन बातों की कोई समझ है, यह झगड़ा भी मिटता दिखाई नहीं देता और भीमदेव वहीं शादी कराने पर तुला हुआ है।"

यही तो अनुचित है महाराज, बेटा बाप के बिना ही शादी करने चला जाए इसमें तो बूढ़ मां बाप की कटती है धर्मदेव ने कुछ व्यग्रता से कहा।

'कटने की क्या बात है। स्वामी जी बोले, 'शादी के बाद भी तो बाप बेटे लड़ झगड़ कर अलग ही हो जाते हैं, दो दिन पहले ही सही हमने तो भीमदेव को समझाया था कि भाई सोच लो माता पिता के शाप से तुम्हें डरना चाहिए, उसने कहा मुझे तो किसी की परवाह नहीं, वह तो हमें और माया को भी शादी के मुआमले में नहीं डालना चाहता था, हम तो डर गए नौजवान है, कहीं गुस्से में आकर प्राण ही न दे दे, ऐसी कई घटनाएं हुई हैं, माता पिता को भी जिद न करनी चाहिए जहां लड़का कहे वहीं शादी करने में क्या हर्ज है।

'पर वह माता पिता से कहे तब न, उसे तो मामा ने ही उछाल

रखा है और खुशहालचंद पंडित जी से न मिल कर कभी चौरंगी से तो कभी भीमदेव से मिलने चला जाता है।

'अब तो मिलने की जरूरत ही नहीं रही, भीमदेव तो कह रहा था, अपनी मिल के कुछ साथियों को लेकर बरात सजा कर चला जायगा और शादी कर लेगा।

'नौबत यहाँ तक पहुंच गई है, "हैरान होकर धर्मदेव ने कहा।

स्वामी जरा सा मुस्कराए और धर्मदेव की ओर गौर से देखा और बोले।

'अच्छा मान लो यदि ऐसा ही कुछ हो जाए तो तुम्हारा क्या रुख होगा, धर्मदेव।

'मेरा रुख महाराज, आपके सामने झूठ नहीं बोलता, मैं तो अपने वृद्ध पिता का साथ नहीं छोड़ूंगा, जब कि उसका कोई दोष भी नहीं, उड़दपुर से हमारा गाँव कोई दूर नहीं, ज्यों ही कोई इस तरह की बात सुनी तो बाजार से एक वेश्या किराए पर पकड़ लूंगा, उसे साथ ले जाऊंगा, वह कहेगी भीमदेव से ब्याहता है, बस शोर तो मचेगा ही, बच्चू को छटी का दूध याद आ जाएगा। यह भी न हो तो उड़दपुर में हमारी रिश्तेदारी है, पंडित जी ने बीसियों मर्तबा वहाँ सनातन सभा की ओर से उपदेश प्रवचन किए हैं, उन्हें कौन नहीं जानता, यदि हम अपने गांव के दस आदमी लेकर भी पहुंच गए तो विवाह वेदी पर बैठे हुए भीमसेन को भी उठा लाएंगे, भले ही फौजदारी हो जाए।

धर्मदेव ने यह बात इतने निश्चयात्मक स्वर में कही कि स्वामी जी भी काँप उठे, और उन्होंने घबराए हुए स्वर में कहा।

'तुम उसे तार देकर बुलाओ कल ही बुला लो और उसे समझाओ ऐसा न हो कि नवरात्रोंमें वह कुछ कर ही न गुजरे।

बातों-बातों में रात के तीन बज गए थे, इसलिए सब अपने स्थान पर सो रहे, स्वामी जी तो दूसरे दिन कानपुर चले गए और धर्मदेव की ओर से रघुवर नारायण ने भीमदेव को तार भेजा।

'तुम्हारा भाई सख्त बीमार है, तार पाते ही चले आओ।

धर्मदेव ने अगले दिन के लिए दफतर से छुट्टी ले ली और बिस्तर में पड़ा रहा दिन निकला ही था कि भीमदेव धड़ धड़ करता सीढ़ियां चढ आया, उसके सीढियां चढ़ने की आवाज से ही समझ गए कि वह आ गया, उसने आते ही भीमदेव का हाल चाल पूछा, यह समझ कर कि भाई साहिब ठीक हैं उसकी जान में जान आई।

प्रेमवती ने चाय तैय्यार कर ली। वह चाय ले आई और बातें शुरू हुईं और चाय भी पी जाने लगी। दिन भर बातें होती रहीं, कभी धर्मदेव गर्म हो जाता तो भीमदेव शांत रह कर सुनता, कभी भीमदेव घबरा कर जोर-जोर से बोलनें लगता तो प्रेमवती उसे धीरज दिला सा देतीं।

भीमदेव अपनी जगह सच्चा और दुःखी था, उसके हृदय की बात किसी ने न सुनी, जिस दिन से मामा के साथ वह नूरपुर चला आया था और पिता की दुर्दशा, उसके सामने हुई थी, वह गांव न गया था। लज्जा और ग्लानि से उसका दिल, दिमाग परेशान था। उसने यत्न तो किया कि आपस में न बिगड़े और बिगड़े तो ऐसी कि जन्म जन्मांतर तक सुधर न सके और उसका साधन बना वह खुद ही। माता पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह करने की उसकी इच्छा न थी, पर कच्ची बुद्धि, गुरुदेव की आज्ञा मामा का भय, वह धर्म संकट में उलझ गया था, उधर लड़की का बाप हर तीसरे दिन उसके पास पहुँच कर रिरियाता रहता, कभी तो भीमदेव खीज उठता कभी हाँ कह देता।

भाई भावज ने सारी स्थिति समझाई कि उसके लिए एक नहीं दस लड़कियां तलाश कर दी जा सकती हैं, जब कहे तब शादी हो सकती है, जहां कहे वहीं हो सकती है, पर वृद्ध माता पिता की प्रसन्नता साथ चाहिए। वे तो अपनी संतान का सुख और कल्याण ही चाहते हैं, फिर उनके विचार पुराने और दकियानूसी नहीं हैं कि अपनी जिद पर ही अडे रहेंगे।

अड़ियल घोड़ा हंटर खाकर भले ही बस में न आए पर प्रेम की पुचकार उसका मन हर लेती है, भीमदेव की जैसी मनः स्थिति में स्नेह दुलार ही काम दे सकता था, और वह काम कर भी गया, भीमदेव का मन भाई भावज की बातें सुनकर स्वस्थ हो गया और वह दो तीन दिन उनके पास ठहरा रहा।

इतने में ही चौरंगीलाल का पत्र आया। इस लम्बे पत्र में चौरंगीलाल ने अपने बड़े भानजे की सारी घटना अपने दृष्टि कोण से लिख कर भजी जिसमें यह साबित किया गया था कि वह मजलूम है, उसके साथ जयादती हुई, साथ यह भी पूछा था कि वह तो सत्य और न्याय के पक्ष पर है, सत्य के लिए वह जूझेगा, धर्मदेव को किस पक्ष में होना है, धर्म या पाप के पक्ष में······

पत्र उसने इस तरह शुरू किया था।

श्रीमान चिरंजीव धर्मदेव जी चौरंगीलाल का आशीर्वाद कुछ दिन हुए पं० खुशहालचंद उड़दपुर से श्री महाराज जी के पास आया था, बहुत दुःखी हो रहा था, महाराज जी ने उसे मेरे पास भेज दिया।

यह बात पढी तो धर्मदेव तड़प उठा, महाराज जी तो कह रहे थ कि खुशहालचंद नूरपुर नहीं आया, पर वह तो सीधा उन्हीं के पास आया था, महाराज जी को इतना निरर्थक झूठ बोलने की क्या जरूरत थी, उसने झट कागज कलम उठाकर दो पत्र लिख डाले एक कानपुर में स्वामी जी और दूसरा चौरंगीलाल को।

चौरंगीलाल को उसने लिखा।

मामा जी आपसे हम सब को बड़ा स्नेह और हार्दिक श्रद्धा है, आप सिंह है तो मान लीजिए हम गीदड़ हैं, परन्तु पिता जी की सबसे बड़ी कृपा हम पर यह है कि आप जैसा मामा दिया पिता के प्रति हमारा कर्त्तव्य हैं, उनके प्रति आपका भी कर्त्तव्य है। किसी तीसरे के लिए उनसे रार मोल लेना, या फिर घर जाकर उनका अपमान करना आपको शोभा नहीं देता था। आपने भूले-भटके आदमी को रास्ता दिखा दिया,

हाथ में लैम्प थमा दी फिर भी वह उल्टे रास्ते जाकर कष्ट पाए तो आप क्या कर सकते हैं। पिता जी को आप से और आपके संगीत से प्रेम हैं, हम भी चाहते हैं आप बाहिर घूम फिर कर अपनी कला का प्रचार और प्रसार करें यदि आप हमारी बात नहीं मानते तो हम कर ही क्या सकते हैं आदि-आदि।

स्वामी जी को उसने चौरंगीलाल के पत्र की सारी बातें लिख दीं और यह भी कि जिस तरह भी हो वे इस झगड़े को मिटाने में सहायक हों।

स्वामी जी ने उत्तर में यही लिखा कि वे सम्बंधियों के इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहते जैसे भी हो सब मिलकर स्वयं ही इसे सुलझाएं।

चौरंगीलाल का जवाब भी आया पर देर से, उसने पहिले से भी लम्बा पत्र लिखा था।

तुम्हारा पाखंड पुराण मिला, तुम्हारी झूठ की इस विष्णु सहस्त्र नाम का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं, पंडित जी हस्पताल के बारे में महाराज जी को तीन दिन तक कांटों में घसीटते रहे, बात किसी की न मानी धर्मदेव को अपने लिखने पर बड़ा गर्व था, वह समझता था कि उसका लिखा हुआ विनम्रतापूर्ण पत्र सब बात सुलझा देगा, परन्तु यहाँ तो सब बात उलटी पड़ी। चौरंगी ने दूसरे पत्र में इस बात पर भी आपत्ति उठाई कि वह अपनी पत्नी के साथ उड़पुर क्यों गया था मुनासिब बात न थी, और कि यदि वह पाप और पाखंड का ही पक्ष लेगा यानी अपने पिता का समर्थक बनेगा तो अपने मामा को नारकवास किया हुआ समय ले और बच्चों की अंतिम आशीर्वाद से पत्र समाप्त किया गया था।

धर्मदेव जल ही तो गया, पर उसने एक बार फिर यत्न किया, और अंतिम पत्र लिखा उसमें मामा से प्रार्थना की, कि एक ही पक्ष और बात को लेकर वे तर्क और विचार को मिट्टी में न मिलादें पंडित जी जिस ढंग से काम करना चाहते थे, वह महाराज जी को पसंद न था, और

महाराज जी की या फिर कमेटी की कार्य प्रणाली पंडित जी को पसंद न थी, महाराज जी ने उन्हें हस्पताल से अलगकर दिया और वे आ गए, वह बात तो समाप्त हुई साथ ही यह भी लिखा कि यदि माता पिता यह रिश्ता नहीं रखना चाहते तो आप क्यों बीच में पड़कर उन्हें या लड़के को मजबूर करते हैं, वह रिश्ता यदि आपको इतना ही भा गया है तो अपने बड़े लड़के को करा दीजिए।

इसके साथ ही एक पत्र उड़दपुदपुर पं० खुश्हालचंद को लिखा यदि आप यह रिश्ता करने पर ही तुले हुए हैं तो सीधा पंडित जी को मिलिए या फिर यह विचार ही छोड़ दीजिए।

खुश्हालचंद इसी पत्र को लेकर फिर चौरंगी से मिला और चौरंगी ने दुबारा फटकार भरा पत्र लिख मारा, अब कि धर्मदेव मन मार कर चुप ही रहा। चौरंगी के सिखाने पढाने पर खुश्हालचंद ने पंडित बसंतराज को एक पत्र लिखा, कि सगाई में जो कुछ वह भेंट कर आया था सब वापिस किया जाए। पंडित जी ने २०) मनीआर्डर करवा दिए, थाल उनके घर वापिस भिजवा दिया।

स्वामी जी जल्दी ही कानपुर से वापिस आ गए, जल्दी इसलिए कि चौरंगीलाल की लड़की का विवाह होने वाला था, उन्हें वहां पहुँचना था। मामा यदि बुलाए तो धर्म और भीम भी शादी में शामिल हो जाएंगे, जसोदा देवी भी जा सकती है, परन्तु वे खुद न जाएंगे, ऐसी पंडित बसंतराज ने आज्ञा भी दे दी थी। मामा की लड़की से सब को स्नेह था इसलिए विवाह पर भेंट के लिए अलग-अलग सब तैयार थे, परन्तु न तो धर्मदेव और भीमदेव को ही पत्र आया और न जसोदा देवी को ही बुलाया गया, इस पर सन्धि की सब आशाएं टूट गईं।

स्वामी जी दिल्ली आए तो उन्होंने भक्त मंडली में बैठकर यही चर्चा चलाई, कैसे लोभ के वश पंडित बसंतराज़ ने लड़की वालों को जवाब दे दिया और चौरंगीलाल ने लड़की वाले का पक्ष ले पंडित जी को झाड़ा और शर्मिदा किया, यह सब कथा वह बड़ा रस लेकर सुनाते

थे। धर्मदेव उस समय मौजद नहीं था। रघुवर ने उसे सारी बात सुनाईं तो संध्या के समय जब स्वामी जी एकाँत में बैठे थे, वह उनके पास गया, और सारी बातें शुरू से आखीर तक सुनाईं, वह उड़दपुर को गया, उसके साथ खुशहालचंद ने कैसा सलूक किया, सभी सुनकर स्वामी जी बोले।

वास्तव में खुशहालचंद ने ही दोनों सम्बन्धियों में फूट डाल दी, वह बड़ा दुष्ट है, "और तब वे लम्बी सांस भरकर बोले, यह सब सच है परन्तु धर्मदेव पंडित जी ने हमारा बसता बाग उजाड़ दिया।"

यह बात सुनी तो धर्मदेव विचलित हो उठा, जी में आया स्वामीजी से उलझ जाए परन्तु उसनें चुपचाप स्वामी जी को प्रणाम किया और चला आया। इतने बड़े महात्मा के मन में प्रतिशोध की ज्वाला प्रतिहिंसा का भाव, जबकि वे स्वयं भ्रम में थे, असलियत का उन्हें ज्ञान न था।

स्वामी जी चले गए और उनकी कृपा से चौरंगीलाल की लड़की का विवाह धूमधाम से हुआ, सब रीति-रिवाज पूरे किए गए, सब पाखंड निभाए गए, चार कोस पर बहिन मन को पत्थर किए बैठी रही, उसे बड़ा चाव था भाई की लड़की के विवाह का, पर किसी ने बात न पूछी।

धर्मदेव ने गुस्से में आकर स्वामी जी को लिखा—विवाह शादी में उठे हुए मन जाते हैं—आप चाहते तो चौरंगी विवाह की खबर भी न देता आपको तो निष्पक्ष रहना चाहिए था, परन्तु आप तो बड़े हैं, कहते हैं न बड़े आदमियों का सात बीस का सौ होता है—पाँच का नहीं। गुरुजी ने कुछ भी उत्तर न दिया, चुप ही रहे।

गर्मियों की छुट्टियों में स्कूल बंद हो गए तो धर्मदेव ने बच्चों को घर भेज दिया, कुछ दिन बाद छुट्टी लेकर वह भी घर चला गया। वर्षों के नियम और अभ्यास के अनुसार वह सब को लेकर नूरपुर गया। डेरे पहुँचकर सबने स्वामी जी को प्रणाम किया, और सब जने जाकर बैठ गए।

चौरंगीलाल भी इधर-उधर फिर रहा था, न उसने किसी को बुलाया

और न कोई उससे बोला, यहाँ तक कि बच्चों से भी उसने बात नहीं की।

स्नान भोजन के अतिरिक्त स्वामी जी ने बात छेड़ी।

कहो भई धर्मदेव अब बुलाएं सबको, बातचीत कराएं।

नहीं महाराज जी, व्यर्थ पानी बिलोने से क्या लाभ—हाथ कुछ न आएगा, शाँति भंग होगी, जिसने हमें शादी ब्याह तक में नहीं बुलाया, उससे बात करने में क्या लाभ ?

आप स्वयं क्यों न आ गए, लड़की का ही विवाह था।

यह भी कोई न्याय की बात है महाराज, बिना बुलाये चले आते, और इन मामा जी ने पता है क्या किया है, भीमदेव को फिर पत्र लिखा था कि वह दो आने की मेंहदी लेकर आ जाए मैं उसे अकेला जाकर ब्याह लाऊंगा और अपनी लड़की की शादी बाद में करूंगा, वह पत्र उसने मुझे भेजा था।

यह झूठ है, कभी नहीं हो सकता, यह तो असत्य है। अच्छा छोड़ो इन बातों को बात यों मिटती है कि तुम मामा से क्षमा माँग लो।

इतने में जसोदा देवी बोलीं—पहले चौरंगी पंडित जी से क्षमा माँगे, तब यह भी मांग लेगा।

तेरा एक ही तो भाई है, बड़ा पहिले ही मर चुका है, तू ही क्यों नहीं उसे मना लेती। स्वामीजी बोले—

मैं भी तो उसकी बड़ी बहिन हूँ, वह ही मुझे शादी पर बुला लेता उसे इच्छा नहीं तो मैं ही कौन मरी जाती हूँ महाराज! फिर से मना लूं तो रहना कहाँ है—अपने आदमी का अपमान किया ही, उनकी कोई बात न पूछे और मैं सुलह करती फिरूं, आदमी घर से न बाहर निकाल देगा तब तो आप भी आश्रय न देंगे :

स्वामी जी ने हिम्मत न हारी—

देखो, जसोदा उसके लड़का हुआ है, उसको बधाई दे दो बस, इस जीवन का क्या पता है आज है कल नहीं—

यह तो सबके साथ है महाराज—जीवन रहे चाहे जाए मैं तो सत्य से मुँह नहीं मोड़ सकती, वह पंडित जी से क्षमा माँग ले तो सब बात हो सकती है ।

तब तक दोपहर ढल गई, शाम की गाड़ी से सबको वापिस लौटना था, इसलिए प्रेमवती ने अपनी अमानत जेवर माँग लिये, स्वामी जी ने लाकर दे दिए, सबने स्वामी जी को प्रणाम किया और चल पड़े । तब स्वामी जी ने धर्मदेव को बुलाकर कहा 'वह काम दिल्ली जाकर जरूर कर देना भाई ।'

'जो आज्ञा महाराज—इतना कहकर सीस नवाकर धर्मदेव भी चल पड़ा । उसने काम के बारे में नोट कर लिया था । बात यह थी कि स्वामी जी का हस्पताल अब डाक्टर जानकी वल्लभ के चार्ज में आगया था, परन्तु वे तो साधारण कम्पाउंडर थे, एलोपैथी दवाइयाँ जानते थे, आयुर्वेद की उन्हें कुछ भी समझ न थी, यह कमी स्वामीजी ने एक नौसिखिए नौजवान वैद्य को रखकर पूरी की जो गत वर्ष वैद्याचार्य की परीक्षा में फेल हो चुका था । स्वामी जी चाहते थे उसके प्रश्न पत्रों का पुर्नेनिरीक्षण हो, मतलब कि वह पास हो जाए । दिल्ली में जहाँ यह परीक्षायें होती थीं उस कार्यालय में धर्मदेव काम कर चुका था, उसका अध्यक्ष उसका मित्र था, स्वामी जी चाहते थे, नए वैद्य जी किसी तरह पास हो जावे, इसी निमित्त उन्होंने वैद्य जी को एक सुन्दर सी घड़ी देनी चाही पर धर्मदेव ने हाथ जोड़ कर इन्कार कर दिया, दिल्ली में थे तो एक बढ़िया ६०-७० रुपए के मूल्य का कम्बल भी उसे देने लगे, बड़ी जिद की, पर धर्मदेव ने कम्बल की ओर आँख उठाकर न देखा, परन्तु जिस काम के लिए कहा था वह कर दिया ।

आश्विन के नवरात्रों में जसोदा देवी को बुखार आने लगा, वे बहुत दुर्बल हो गई तो पं० वसंतराव ने बच्चों और बहू को दिल्ली से बुला ही लिया, धर्मदेव न आ सका, लम्बी छुट्टी न मिल सकती थी, उसने लिखा था कि माता जी ठीक हो जाएं तो उन्हें बच्चों के साथ दिल्ली भेज दिया

जाए। परन्तु जसोदा देवी की हालत दिनों दिन बिगड़ती गई और दस-हरे के चार दिन बाद उसे दफ्तर में तार मिला—तार भीमसेन का लिखा था।

माता जी की दशा चिन्ताजनक है चले आओ।

धर्मदेव उसी रात गाड़ी में सवार होकर चल दिया, अभी गाडी गाँव के स्टैशन पर पहुंची ही थी कि जसोदा देवी नें राम-राम करते प्राण दे दिए। वह अभागा अन्तिम बार माता से बात न कर सका, माता भी पुत्र की राह देखती रही। वह रोया धोया, ६ महीने हुए थे तब माता से मिला था, उसके मन में पछतावा रह गया। सेवा भी न कर सका।

घर भर में ही नहीं गली मुहल्ले ही नहीं गाँव में कुहराम मच रहा था, किसी को आशा न थी कि जसोदा देवी इतनी जल्दी समाप्त हो जाएंगीं, एक दिन में हालत बदल गई और वे इतनी लोकप्रिय थीं कि गली मुहल्ले के बच्चे भी उनको याद करके रो रहे थे। सबसे मीठा बोलतीं, सब को नेक सलाह देतीं, सत्कर्मों की ओर सबको लगातीं, सबके दुःख सुख में उनका साझा था। निर्धन गरीब साधु संत की सेवा भी कर देतीं थी, हठ की पक्की और चरित्र की उज्ज्वल, गांव वाले भी अनुभव कर रहे थे जैसे गाँव की देवी ही उठ गई।

मरने से कुछ दिन पूर्व जसोदा ने स्वामी जी को बुलाकर उससे बड़ी बातें कीं और अंतिम प्रणाम भी किया। स्वामी जी के कहने पर भी चौरंगीलाल अंतिम बार बहिन को देखने न आया था।

जसोदा देवी का मृतक देह बैठक में भूमि पर पड़ी थी, पास बैठी प्रेमवती, बड़ी लड़की और पास पड़ौस की स्त्रियां रो-धो रही थीं बाहिर चबूतरे पर आदमी बैठे थे, धर्मदेव का मुंडन हो रहा था। सिर के बालों के साथ-साथ आँखों से आंसू भी टप-टप गिर रहे थे। चौरंगीलाल अपनी बड़ी लड़की को साथ लिए आया, जिसे बुआ बड़ी प्यारी थी, पिता के भय के मारे जीवित बुआ के पास न आ सकी थी, वह तो रोती बिल-खती अन्दर बुआ के शव के पास चली गई और चौरंगीलाल सबसे

अलग-अलग चुपचाप बैठे रहे ।

"बूआजी हमसे बोलती क्यों नहीं, मैं क्या जानती थी कि इतनी जल्दी ही आपने हमें छोड़ जाना है," लड़की अन्तर से निकला हुआ विकल रुदन सुनकर सभी रोने लगीं—जसोदा देवी की बड़ी लड़की रोते-रोते कह उठी माता जी बाहिर तुम्हारा भाई आया है, जरा उससे दो बातें ही करलें, तू तो रुठ ही चली गई, और भाई अब भी बाहिर बैठा जैसे बिस घोल रहा था, उसकी आँख में आँसू न था, जाने वह किस सोच में पत्थर बना बैठा था कि एक वृद्धा स्त्री ने उसे कंधे से पकड़कर झकझोरा, "निर्मोही जाके अपनी बहिन को आखिरी बार देख तो ले।"

वह उठा दरवाजे के अन्दर दो कदम रख लाश के पांव की ओर अपनी छड़ी का सहारा लेकर खड़ा हो गया औरतों ने जसोदा देवी का मुंह नंगा कर दिया, क्षण दो क्षण जरा झुककर वह देखता रहा, उसकी मुख मुद्रा ऐसी थी जसे कोई डाक्टर किसी शव का पोस्टमार्टम करने चला हो, तब वह वहाँ से हट गया ।

एक सर्द या गर्म आह तक उसके होठों तक नहीं आई, आँखों में पानी ही कहां आता, वैसा का वैसा ही जहाँ बैठा था वहीं आ बैठा, लोग बाग हैरान थे कि यह भाई है या कसाई। वास्तव में वह ऐसा ही कठोर प्रवृति का था। बड़ी बहिन महीनों बीमार रही थीं उसने सैकड़ों संदेश और पत्र भेजे, मिलन को तरस गई पर वह नहीं गया था, कारण बहन थी, वह तो बिलकुल निर्दोष थी असील गाय जैसी, कारण था उस का पति जो बिना चौरंगी को बताए अपने छोटे बेटे को नूरपुर से ले गया था। बहिन का लड़का, गाने में उसकी तबियत और शौक देखकर चौरंगी उसे ले आया था, पर निरीह बालक, मामा की मारपीट न सहन कर सका, बाप को चिट्ठी लिख दी और वह आकर ले गया था, बस इतना सा ही दोष था बेचारी का,—गाँव वाले उसकी नृशंसता पर बहुत देर तक आश्चर्य न कर सके क्योंकि इतने में जिसकी प्रतीक्षा थी जसोदा देवी की छोटी लड़की जो उन्हें बड़ी प्रिय थी रोती बिलखती आ गई

और शव को उठाने की तैयारी होने लगी :

शव को स्नान कराके वस्त्र पहराये गए।

शव को कुर्सी पर बिठा कर फोटो खींचने का प्रयत्न किया गया, पर प्लेट पर छाया ही नहीं आई। तब उन्हें अर्थी पर लिटाया गया, अर्थी कन्धे पर उठाई गई राम नाम सत्य है, की आवाजें उसे शमशान की ओर ले चलीं—शमशान भूमि में ले जाकर यथा विधि दाह संस्कार किया गया, सबने उस देवी को अन्तिम प्रणाम किया और देखते ही देखते धू-धू करती अग्नि में शरीर के एकत्रित पाञ्चों भूत जल उठे, आत्मा तो पहिले ही निकल चुका था, सब की आंखें जीवन के अन्त को देख बाँध तोड़ बह उठीं, चौरंगीलाल उस समय भी दूर एक लहलहाते खेत की मेंड पर बैठा आकाश में फिर रहे बादल की ओर शुष्क आंखों से देख रहा था, सब स्नान करने के लिए एक रहट की ओर बढ़े, स्नान करके गांव की ओर बढ़े, तो चौरंगी चुपचाप स्टेशन को हो लिया, उसकी गाड़ी का वक्त हो गया था—जाता हुआ लड़की को साथ ही ले गया।

गांव के लोग व्यवहारी और रीति रिवाज के बड़े पाबन्द होते हैं, काठ कफन ननिहाल की ओर से आता है, पर जो भाई अपनी एक मात्र बहिन की लाश पर खड़ा होकर द्वेष बुद्धि और कठोरता कायम रख सके उससे ऐसी आशा कौन कर सकता है।

पण्डित जी का कोई और सगा सम्बन्धी न था, इस गाँव में आकर आप ही तो वे बसे थे, वे क्या बसे, जसोदा देवी ही उम्र भर यहाँ रही, गांव उन्हें बड़ा प्रिय था, यहीं विवाहित होकर आई थीं, पंडित जी विवाह कर लाए स्वयं अग्नि को गोदी में रख भी आए थे, अग्नि को साक्षी दे कर लाए तो उसे ही सौंप आए—वे तो बाहिर के पखेरू थे, पर उनका मान और यश बनाए हुए सुख में दुख में साथ देते हुए वह गाँव में ही रही, अपने घर का बड़ा मोह था कहा करती थीं, इसी झोपड़ी ने मेरी उम्र कटाई है, मुझे तो अपना गाँव प्यारा लगता है,

'गाँव वालों ने भी दुःख सुख में पंडित जी की घर या बाहिर सब तरह से उनकी मान मर्यादा निभाई थी, आपस में कभी-कभी बोल चाल भी हो जाए तो आपस के स्नेह में बहुत देर तक बाधक न बनती थी।

गांव के लोग पंडित जी पर इसीलिए बड़े प्रसन्न थे कि वे वहाँ आकर बस गए थे, ऐसा यशस्वी विद्वान् गाँव में रहे तो वहाँ के निवासियों के अहो भाग्य, परन्तु वे सब उनसे नाराज भी रहते थे कि पण्डित जी कुल मिलाकर साल में आठ महीने बाहिर और चार महीने घर, बस सुबह आए संध्या को गए, कुछ भी हो जसोदा देवी थीं तो उनके लिए आना ही पड़ता था, अब सोचने लगे, पण्डित जी किस के लिए आया करेंगे, और पण्डित वसंतराज सोच रहे थे, जीवन भर वह मुझ से यही चाहती रही मैं यहां रहूँ, यही उसकी साध थी, जो उसके जीते जी पूरी कर न सका पर अब उसके मरने के बाद करनी पड़ेगी। वह घर मकान संभाले बैठी थी, अब कौन संभालेगा, लड़कों का काम धन्धा बाहिर है, मैं भी न रहूँ तो जगह बरबाद हो जाएगी, अब तो बंधना ही पड़ेगा, मरना तो एक दिन सब को है। परन्तु वह चार छः वर्ष और निकाल देती तो बाजों गाजों के साथ छोड़ के आते, अभी तो उम्र ही कुछ न थी, ५५ वर्ष, और भीम देव की शादी भी न कर पाई, अपने हाथ से बहू के लिए जेवर बनवाया, साड़ी जम्पर मंगाए, झोली गुथली तैयार की, जहाँ वह पहले ही चाहती थी, (क्योंकि बड़ी माँ जी स्वप्न में वहीं के लिए कह गई थीं) वहीं सगाई की बात पक्की हो गई और जन्माष्टमी वाले दिन वे आने ही वाले थे, सभी तैयारी हो गई थी, पर वक्त पर उनका तार आ गया था, और वे किसी कारणवश रुक गए थे, बड़ा दुख हुआ था, उसके मन की मन में ही रह गई। नवरात्रों में भी वे न आ सके, नहीं तो शादी न सही सगाई तो कर ही जाती, इसी बात का पण्डित जी को ही नहीं सभी को बड़ा मर्मान्तक कष्ट था परन्तु होनहार बलवान—घर में सारा दिन यहीं कथाएँ होती रहतीं।

चौथे वाले दिन अस्थि संचय हुआ, नहा धोकर घर लौट रहे थे कि

स्वामी जी, डॉक्टर सीता वल्लभ और वैद्य दाऊ जी को साथ ले आए, बैठक में बैठ गए। आध पौन घण्टा ठहरे, सब को धीरज दिया और दोपहर को चले गए। धर्म देव उन्हें देख कर फूट-फूट कर रो पड़ा, जैसे दरिया का बाँध टूट पड़ा हो—स्वामी जी में उसकी भक्ति और स्नेह सब से अधिक था, उनमें वह इस समय अपने अन्धेरे मन का सहारा ढूँढ़ रहा था, पर उन्होंने उसकी ओर अधिक ध्यान न दिया।

नवें दिन धर्मदेव अपने उपाध्याय पं० शक्ति दत्त जी के साथ माता की अस्थियां लेकर शाम की गाड़ी से चल दिया, रात भर जगता रहा, गाड़ी दस बजे के लगभग हरिद्वार पहुँची, स्टेशन से कनखल तक टाँगे में गया, वहाँ अस्थि प्रवाह किया, हर की पैड़ी पर आकर स्नान किया और कुशाघाट पर दशगात्र करा, संध्या समय फिर हरिद्वार से गाड़ी में सवार होकर अम्बाले और अम्बाले से कुरुक्षेत्र, प्रातः काल मोटर पकड़कर पहोए पहुँचा वहाँ क्रिया कर्म करवा, तीन बजे के लगभग फिर मोटर पकड़ी। कुरुक्षेत्र स्टेशन से रात की गाड़ी पकड़, रात भर जाग कर प्रातः लुधियाने और लुधियाने से सूर्य उदय होने तक गांव पहुँच गया इतने लम्बे सफ़र के कारण थक कर चूर-चूर हो गया था, अनिद्रा के कारण आँखें फटी जा रही थीं, आंखों से पानी चश्मे सा फूटा पड़ता था, घर पहुँचा तो प्रेमवती ने स्वामी जी की चिट्ठी दी—

"धर्म देव से कहिए, आते ही हमें मिले, एक जरूरी काम है, और हमारी तबीयत खराब है।"

चिट्ठी पढ़ते ही धर्म देव जाने को तैयार हो गया, वही क्रिया कर्म वाली कुरती और वही २½ गज का सफेद कपड़ा और भूंगी सिर पर, कपड़े तो पगड़ी बाँधने के समय ही बदले जाते थे, वैसे ही वह उठा, पड़ोस से किसी की साइकिल मांग कर चल दिया, सबने रोका, शाम की गाड़ी से चले जाना, पर उसे तो क्षण भर ठहरना दूभर हो गया, गुरु जी के लिए उसके मन में ऐसी ही श्रद्धा भावना थी। आध पौन घण्टे में वह नूरपुर डेरे में पहुँच गया, स्वामी जो द्वार पर ही खड़े थे, हाथों

हाथ उसे भीतर ले गए और दरवाजा बन्द करके सांकल चढ़ा दी ।

'आप कुशल से तो हैं महाराज जी, मैं तो पत्र पढ़ के डर ही गया था । अभी हरिद्वार से लौट रहा था, पत्र मिला तो सीधा चला आया हूँ आप की तबीयत कैसी है ?

यों ही जरा सा बुखार आ गया था, हमने तो तुम्हें इस लिए बुलाया था कि तुम्हारे बारे में हमें एक बुरा स्वप्न आया था । इसलिए हमारी इच्छा हुई कि तुम्हें सावधान कर दें, देखो तुम अच्छा करो तो चौरंगीलाल को मना लो, वह तुम्हारा बुजुर्ग मामा है, उससे क्षमा माँग लो ।

गुरु जी की यह बात सुनी तो धर्मदेव अवाक रह गया, मनमें सोचने लगा, दुःख की नहीं पूछी, धीरज सान्त्वना की बात नहीं यहाँ तो तीन रात्रि का जागरण, माता की मृत्यु का शोक और भविष्य की चिन्ता का बोझ, यही कम न थे, फिर भी भावना से अंधा हुआ यहां तक चला ही आया और आप कह रहे हैं, चौरंगीलाल से क्षमा मांग लो ।

उसने अधीर मन, पर संयत शब्दों में कहा,

आप सत्य कहते हैं महाराज जी, वह हमारा पूज्य है, मामा है, पिता से भी बढ़कर हो सकता है, पर पिता नहीं—कितना भी प्रिय हो मामा पिता नहीं हो सकता, और कितना ही अप्रिय हो पिता मामा नहीं हो सकता । पिता के प्रति जो कर्तव्य है, वह भी हमें निभाना है, दोनों अपने-अपने स्थान पर पूज्य हैं । आप मामाजी से कहिए वे पिताजी से क्षमा माँग लें, हम तो पहले की तरह ही उनके दास रहेंगे ।

फिर वही बात, तुम तो नाजायज हठ करते हो, उसने पंडितजी का क्या बिगाड़ा था, फिर भी जब जसोदा देवी के मरने पर वह गया था तो उसने पंडितजी को कहा था—

कहा होगा महाराज जी, तो उन्होंने भी जीते रहो कह दिया होगा, परन्तु आप ही सोचिए वह समय नमस्कार या पैरों पौने का होता है, इसकी आँख से पानी की एक बूंद तक न गिरी, धर्म की हाय धाय

भी न मारी काठ कफ्फन तक न दिया, किसी से बात तक न की, अलग बैठा रहा, अस्पृश्यों की तरह, हमें धीरज दिलासा ही देता—

उसे यह पाखंड नहीं आता, घर पर वह बहुत रोया था, वह दिखावे में विश्वास नहीं करता, व्यवहार और बनावट से उसे चिढ़ है—

तब तो महाराज जी वहाँ जाने की भी क्या आवश्यकता थी, यह भी दिखावा और दुनियादारी ही थी, आपको याद होगा नाना जी की मृत्यु ८२ वर्ष की आयु में हुई थी, यहाँ डेरे में ही उन्होंने सन्यासी रूप में प्राण छोड़े थे तो इन्हीं महाशय ने रो रोकर चीख-चीखकर सिर पीट-पीटकर आसमान सिर पर उठा लिया था, उस समय आप ही ने कहा था— जाओ चौरंगीलाल रोना पीटना हो तो घर पर जाकर रोओ पीटो, यह तो संतों का डेरा है, यहाँ रोने का क्या काम। वह बनावट थी या हकीकत।

तुम तो व्यर्थ में बात बढ़ा रहे हो, हमारी तो यही इच्छा है कि तुम उसे राजी कर लो—

आपकी इच्छा तो बड़ी ही शुभ है भगवन, परन्तु जिसने पिता को सरे बाजार गालियाँ दी हों, अपमान किया हो, उसके साथ बिना पिता के मन को संतोष दिए कैसे मेल बढ़ाया जा सकता है,

वह तो कहता है मैंने एक भी अपशब्द पंडित जी को नहीं कहा, एक भी गाली नहीं दी—

धर्मदेव ने तब गुरुदेव के चरण पकड़ लिए महाराज जी आप ईश्वर रूप हैं जैसा आपको चौरंगी वैसे ही हम, न्याय कीजिए, निष्पक्ष होकर, एक ही पक्ष की पुष्टि न कीजिए, हमारा भी संसार में और कोई आश्रय नहीं, और आप कहते हैं चौरंगीलाल ने गाली नहीं दी, वह तो अब तक १२ वर्ष बीतने के बाद भी अपने मृतक पिता को ऐसी-ऐसी बीभत्स गालियां दे देता है कि सुनने से ही कलेजा फटने लगता है—

वह तो दुःख और क्षोभ में हो ही जाता है, बड़े पंडित जी इसे दुःखी

भी बहुत किया करते थे, परन्तु अब की बात करो, यह निर्णय कैसे हो ?

जैसे आपकी आज्ञा हो, जो न्याय की माँग हो।

हमारी बात तो तुम मानते नहीं हो, तब एक ही तरीका है, दोनों पक्ष आपस में बैठ जाएं और आमने सामने बात कर लें,—

और कोई तीसरा निर्णय दें, आप बीच में बोले नहीं—दूर बैठे सुनते रहें—

अच्छा यों ही सही—तो बुलाएं डाक्टर सीतावल्लभ को, पं० नरायणदास को,

महाराज जी हमारे मन तो इस समय शोक ग्रस्त हैं, चित्त उद्भ्रान्त हो रहा है, आज दोपहर के बाद ३ बजे के लगभग पगड़ी बंधेगी, रात्रि की गाड़ी से पिता जी बम्बई जा रहे है, मैं तो अभी वापिस लौट जाऊंगा, दिसम्बर में धर्म शांति करने के लिए हमें फिर गांव आना है, समय मिला तब बात कर लेंगे—

तो तुम कुछ देर ठहरो, चाय-वाय बनवा देते हैं।

नहीं महाराज जी मुझे गांव जल्दी पहुँचना है, ३ बजे पगड़ी होगी न, यह उसने दुबारा जान बूझकर कहा—

दस तो बज ही रहे हैं, वहां पहुँचने में आध घंटा लग जाएगा, नहाने धोने कपड़े पहनते, भोजन करते भी समय लगेगा, वक्त ही कितना है अब आज्ञा दीजिए।

इतना कह स्वामी जी को प्रणाम कर साइकिल उठा धर्मदेव तेजी से गाँव की ओर भाग चला। उसका मन डेरे के वातावरण से सायकिल से भी आगे आगे भाग जाना चाहता था, नूरपुर की हद से दूर निकल जाना चाहता था, जहाँ उसके गुरुदेव का वास है, गुरुदेव जो उसके भगवान हैं, जो उसके ईष्टदेव हैं, जो उसके होकर भी अब उसके नहीं हो रहे, उसके घायल मन पर स्नेह और करुणा का फाहा न रखकर उल्टा नमक छिड़क रहे हैं, वह खूब तेजी से पैदल चल रहा था, पर वहां दिल्ली जैसी सीधी सड़क तो थी नहीं, रेलवे की लाइन की पटरी थी, ईंट

पत्थरों से सटी पड़ी, संकरी सी पटरी, मोटर लारियों बसों इक्के टांगों और रास्ते की भीड़ का डर तो न था, पर पटरी इतनी संकरी सी कि जरा आँख चूकी हैंडल इधर उधर हुआ तो नीचे गहरी खाई ही शरण दे सकती थी, जीवन का रास्ता भी तो ऐसा ही तंग और खतरनाक है, अकेले चलते भी डर और भीड़ में से चलो तो भी चैन नहीं।

इसी तरह के मानसिक विचार में ग्रस्त धर्मदेव घर पहुँचा।

पिता, भाई, बहिन सबने पूछा, क्या बात थी, कैसा जरूरी काम था महाराज जी तो ठीक थे—बताओ तो सही चुप क्यों हो रहे ?

अब वह बेचारा क्या जवाब दे, जब सवाल करने वालों ने परेशान कर दिया तो उसने कहा—ढाक के तीन पात,

क्या मतलब ? भीमसेन बोला—

कहते हैं—चौरंगीलाल से क्षमा माँगो, उसे मना लो—

'बस, इसीलिए इतना कष्ट दिया, मैं तो पहिले ही कहती थी कल चले जाना, अब थके हारे आए हो, आराम करलो, पर यह किसी को माने तब न,—प्रेमवती बोली

इतने में पंडित जी ने आकर उसका पिंड प्रश्नों और पूरी कैफियत देने से बचाया।

उठो बेटा, गर्म पानी से नहा धो लो, फिर कुछ खा पीकर तैयार हो जाओ, उपाध्याय जी आते ही होंगे, गरुड़ पुराण का शेष पाठ होगा, और पगड़ी भी बंधेगी—

'पगड़ी कहाँ से बंधेगी, मामा तो रुठ गए वे नहीं आने के।

तो हमीं कौन उन्हीं की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

बाजार से पगड़ी न आएगी—पर अब तुम तैयार हो जाओ—

पगड़ी बाजार से तो आ सकती थी तो भी सब का ख्याल नूरपुर के रास्ते की ओर लगा था, शायद कोई पगड़ी लेकर आ रहा हो, पगड़ी आती तो इसी बहाने मेल जोल भी हो जाता, दो आदमी पगड़ी के साथ उधर से आते, चौरंगीलाल रस्म के मुताबिक पगड़ी पेश करते तो पं०

जी को न चाहने पर भी स्वीकार करनी पड़ती और बातचीत का रास्ता निकल आता, पर पगड़ी न आई सब निराश हो गए—पंडितजी किसी को बाजार भेजने वाले थे, कि प्रेमवती की बड़ी बहिन ने अपने लड़के के हाथ पगड़ी भेज दी, उस बेचारी के माता पिता तो पहले ही मर चुके थे, भाई कोई था ही नहीं इसीलिए बड़ी बहिन ने यह कर्तव्य परा किया, समय पर बात रह गई इतना ही बहुत था, परन्तु नूरपुर से संबंध बने रहने के द्वार बन्द हो गए, जैसे नूरपुर की लाइन ही सबके लिए टूट गई हो।

दुनिया के काम तो रुकते नहीं—पगड़ी बंध गई, गरुड़ का पाठ पूरा हो गया। और रात को गाड़ी से पंडित जी बम्बई चले गए।

बम्बई से वापिस लौटने पर पंडित वसंतराज ने जसोदा देवी की धर्म शाँति करने का निश्चय कर लिया। मृतक प्राणी की धर्म शाँति उसके मरने के १६ वें दिन की जाए तो श्रेष्ठ, तीन मास के भीतर की जाए तो मध्यम और वर्ष भर में की जाए तो निकृष्ट, तदनन्तर करे न करे व्यर्थ, धर्मदेव को छुट्टी ज्यादह न मिल सकती थी और पंडित जी को बम्बई जाना था इसलिए १६ वें दिन तो न हो सकी, पर तीन महीने की अवधि में धर्म शाँति कर ही देनी चाहिये इसी विचार से पंडितजी ने धर्मदेव और बच्चों को बुला लिया। अब धर्मदेव सोच रहा था, गांव गए तो स्वामी जी के दर्शनार्थ भी जाना ही होगा, पर वहाँ जाने से पूर्व वह उसे पत्र द्वारा यह प्रार्थना करना चाहता था कि यदि डेरे में जाने के लिए चौरंगीलाल को मनाना जरूरी हो तो वह न जाएगा। घर बैठे ही महाराज का पूजन भजन करता रहेगा, यदि यह शर्त न हो तो वह अवश्य दर्शनार्थ नूरपुर पहुँचेगा, परन्तु उसका यह विचार विचार ही रहा, भीमदेव और प्रेमवती ने उसे ऐसा न करने दिया, उनकी यह इच्छा थी कि पत्र लिखने की आवश्यकता नहीं, जाना ही है तो डेरे जाय, महाराज के दर्शन कर लौट आये, अन्य कोई बात करने की आवश्यकता ही नहीं,

धर्म शान्ती पर घर के सब प्राणी इकट्ठे हुए, विधिवत सब कार्य सम्पन्न हुआ, गाँव भर के ब्राह्मणों के घर प्रथा के अनुसार भोजन पहुँचाया गया, पंडित वसंतराज ने दिल खोल कर खर्च किया, जसोदा देवी के अनुरूप ही उनकी धर्म शांति की गई। अगले दिन धर्मदेव को एक जरूरी कार्य-वश दिल्ली जाना पड़ा, और प्रेमवती अपनी ननद को लेकर नूरपुर चली गई, वहां महाराज जी के दर्शन किए और संध्या की गाड़ी से लौट आई महाराज जी गुरु द्वारे के विशाल भवन की इमारत बनवा रहे थे, काम जोरों से हो रहा था, यह भवन बड़े गुरु महाराज की यादगार में बनवाया जा रहा था और उसमें उन्हीं की मूर्त्ति स्थापित करने का निश्चय किया गया था। स्वामी जी ने गिला किया कि धर्मदेव अब तक क्यों नहीं आया, तो प्रेमवती ने बताया, काम-काज में फुर्सत नहीं मिली, आज ही आने का विचार था, सो दिल्ली चले गए।

धर्मदेव तीसरे दिन दिल्ली से लौट आया, उसकी छुट्टी अभी शेष थीं। दूसरे दिन प्रातः ही नूरपुर से रघुवर दयाल दोषी और उनकी धर्म पत्नी आ गईं। जसोदा देवी दोषी की मौसी लगती थीं, कानपुर रहने के कारण वे अभी शोक प्रदर्शन करने न आ सके थे।

वे ओवरसीयर से इंजीनियर हो गए थे, इसलिए गुरु मन्दिर की इमारत बनाने में उनका परामर्श जरूरी था, स्वामी जी ने उन्हें बुलवाया हुआ था। वे स्वामी जी के परम भक्तों में से थे, और उन्हें ओवरसियरी की शिक्षा दिलाने में स्वामी जी ने काफी रुपया खर्च किया था, इसलिए एहसान का बोझ भी कम न था। अपने मौसा पंडित वसंतराज से भी उन्हें बड़ा प्रेम था, मौसी भी माँ सी प्यारी थी ही, बचपन में मौसी के पास भी कई बार आकर रहे थे।

रात्रि को वे वहीं ठहरे और धर्मदेव तथा पंडित जी ने अपनी सारी राम कहानी दोषी जी को सुनाई सब बात सत्य-सत्य कह दी, भीमदेव ने बड़ी भावज से गई रात तक बातें कीं अपना सारा दुःख रोया, तब पंडित जी ने दोषी से कहा, 'अच्छा बेटा अब तू ही ईमानदारी से बता,

निर्णय तुम्हीं पर रहा कि इसमें हमारा कितना अपराध है और स्वामी जी का कितना ?

दोषी कुछ क्षण तो मौन रहा, सोचता रहा और दबी जबान से इतना कह सका—

'सत्य तो यह है मौसा जी, महाराज जी को व्यवहार का इतना ज्ञान नहीं, उन्हें इन बातों में न आना चाहिए था।

दूसरे दिन दोपहर की गाड़ी से दोषी जी नूरपुर चल दिए क्योंकि वहां काम उन्हें संभालना था, जाते हुए धर्मदेव से बार-बार ताकीद की कि वह जरूर नूरपुर आए, स्वामी जी याद भी कर रहे थे थोड़ा उन्हें रोष भी है कि अब तक वह क्यों नहीं आये।

भीमदेव का भी विचार था कि बड़े भाई के साथ नूरपुर जा आए, परन्तु उसकी छुट्टी खत्म हो चुकी थी,वह तो सुबह की गाड़ीसे अपनी मिल को चल दिया, धर्मदेव नूरपुर जाने के लिए तैयार हुआ तो पंडित जी ने भी साथ जाने की इच्छा प्रगट की, और वे भी तैयार हो गए।

स्वामी जी की भेंट के लिए धर्मदेव बाजार से सेर भर बर्फी ले आया, ताजी ही बनी थी, दुकानदार देने लगा तो उसने कहा, भाई पहले हाथ धो लो यह बर्फी बड़े पवित्र स्थान पर जा रही है उसने लेकर स्वच्छ से झोले में रख ली, दाएं हाथ झोला पकड़ रखा, बल्कि लटकाए रखा जिससे कि गाड़ी की अपवित्र सीट को झोला छू न जाए। बड़े उत्साह के साथ दोनों बाप बेटा नूरपुर स्टेशन पर उतरे, मन में कोई मैल नहीं, आने वाले तूफान का वहम गुमान भी नहीं।

हस्पताल स्टेशन से एकाध फर्लांग दूर था, इसलिए पैदल ही चले, पंडित जी एकाध बार बीच में बैठभी गए क्योंकि वे अधिक चल न सकते थे, या संभव है हस्पताल की ओर चलते हुए कदम झिझकते हों, पर अकसर सौ दो सौ कदम चल कर वे बैठ ही जाया करते थे, दम लेकर फिर चल पड़ते, दुबले शरीर और अभी ताजा-ताजा जख्म दिल पर लगा था। धीरे-धीरे वे हस्पताल के सदर फाटक पर पहुँच गए, सामने ही स्वामी जी दोषी के साथ भावी गुरु मंदिर की नींव पर खड़े मजदूरों के काम का निरीक्षण कर रहे थे।

धर्मदेव ने थैला एक वृक्ष के साथ लटका दिया, और स्वामी जी के चरण स्पर्श किए।

पास ही खड़े दोषी ने प्रसन्नता से कहा, आ गए भाई, बड़ा अच्छा किया, वायदे के पूरे उतरे।

'बिना बुलाए तो आए नहीं स्वामी जी ने जरा रुखाई से कहा।

'यह बात नहीं महाराज, दोषी बोला, 'आने को तो पहले ही इनका विचार था, परन्तु एक दम दिल्ली जो जाना पड़ा।

इतने में पंडित वसंतराज ने भी आकर स्वामी जी के चरण छूए और कोठी के सामने वाली छोटी दीवार के सहारे जा बैठे।

धर्मदेव, स्वामी जी के साथ गुरु मंदिर की नींव वाली दीवार पर खड़ा उनसे पूछ रहा था, बड़ा द्वार कहाँ रहेगा, महाराज जी मन्दिर का बुर्ज किस जगह होगा, जगमोहन कहाँ बनेगा।

उसकी बातों का उत्तर देते हुए स्वामी जी ने एक दम कहा, देखो, धर्मदेव वह आ रहा है चौरंगीलाल उसे प्रणाम करना।

धर्मदेव ने गर्दन अभी उधर फिराई न थी और उसका हाथ प्रणाम करने को उठा ही था कि चौरंगीलाल ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—

'खुश रहो जीते रहो आनन्द रहो, इतना कह वह तो कोठी की ओर चला गया और स्वामी जी ने नींव की छोटी दीवार के एक कोने की ओर चलते हुए ऐसे ढंग से बात शुरू की कि धर्मदेव को प्रतीत होने लगा जैसे सब कार्य किसी नाटक के स्टेज की तरह पहले से ही निश्चित प्रोग्राम के अनुसार चल रहे हों संभव है दोषी ने स्वामी जी को कल रात की बातें कुछ बढ़ा चढ़ा कर बताई हों, क्योंकि स्वामी जी की मुख मुद्रा चढ़ी हुई थीं, नित्य की सहज सरलता उनके चेहरे से आज पहली बार गायब थी, उनके मुख मंडल पर एक खीज सी, व्याकुलता सी छा रही थी। दीवार के एक सिरे पर वे खड़े हो गए, पास ही धर्मदेव भी जा खड़ा हुआ, दो कदम दूर मिस्त्री ठक-ठक करते हुए तेशी और ईंटें ठीक करके दीवार में सीमेंट के साथ-साथ जोड़ रहे थे, स्वामी जी ने तुर्श लहजे पर धीमी आवाज में कहा।

धर्मदेव अब तुम चौरंगीलाल से क्षमा मांग कर सारी उलझन सुलझा लो।

मुझे कब इन्नकार है महाराज परन्तु मामा जी क्यों नहीं पहले पंडित जी से क्षमा मांग लेते।

'फिर वही बात' स्वामी जी ने जरा गर्म होते हुए कहा, तुम उसे गरीब समझ कर बार-बार मजबूर कर रहे हो, उसने क्या बिगाड़ा था पंडित जी का और तुमने कहा न था कि दिसम्बर में आएंगे तो दोनों पक्ष बैठकर सारी बातचीत करके मुआमला साफ कर लेंगे।

'अब तो मुआमला अपने आप ही साफ हो गया, महाराज जी बात-चीत की कोई गुंजायश ही नहीं रहने दी मामा जी ने, उन्होंने पगड़ी तक न भेजी।

'तो क्या हुआ, न भेजी तो न सही, तुम सब उसे भी बदनाम कर

रहे हो और हमें भी, 'शंकरलाल (उनका बड़ा भाई) मर गया था तो उसके लड़कों ने चौरंगी को खराब करना चाहा, अब जसोदा मर गई है तो तुम भी उसे तंग करने लगे।

शंकरलाल बड़ा भाई था, गुरुदेव, उसके लड़के घर मकान जायदाद के बारे में लड़ झगड़ सकते हैं, पर हमें क्या लेना देना है, हमारी माता जी की मृत्यु हो गई रिश्ता खत्म हुआ। उसने ऐसे दुःख में भी हमारी बात न पूछी।

स्वामी जी ने उसकी तो अनसुनी कर दी, अपने बहाव में ही कहते गए, उनके हृदय में संचित क्रोध वाणी द्वारा स्फुलिंग बरसाने लगा—

'वह लखपति होता तो तुम उसके तलवे सहलाते फिरते, अब जो उठता है उसे ही दबाता है, वह क्यों किसी का दबाव सहे—उसने किसी का क्या बिगाड़ा है, और तुम तो मुझे भी बदनाम करते फिरते हो शर्म नहीं आती—

धर्मदेव हैरान था तो भी तुकी बे तुकी जवाब देता हुआ बोला—

वह लखपति होता तो हम मामा के घर थूकने भी न जाते महाराज, हम तो उसे सिर पर चढ़ाए फिरते हैं वही सब को आँखें दिखाता फिरता है, न किसी की इज्जत न किसी का लिहाज—

और स्वामी जी और ऊँचा-ऊँचा बोलने लगे—तो दोषी ने आकर जरा ठंडा किया, यहां नहीं महाराज, कोठी पर आइए, वहीं बैठ कर आराम से बात कीजिए—

मिस्तरी मजदूर हाथ का काम छोड़ कर हैरान खड़े देख रहे थे, शांति के पुञ्ज कहलाने वाले महाराज को क्या हो गया, परन्तु उन्हें अभी और हैरान होना था—

दोषी महाराज जी को लेकर कोठी के सामने वाले फर्श पर बिछी कुर्सियों पर ले आया, पंडित जी वहां बैठे ही थे, धर्मदेव भी वहीं आ गया।

'अब करो बात—स्वामी जी बोले—

'हम तो गुरुदेव आपके दर्शनार्थ आए थे, सो आपके दर्शन करके वापिस चले जाना है। किसी तरह की कोई बात करने का हमारा मन नहीं—हम तो यों ही शोक संतप्त हैं—पंडित जी ने उत्तर दिया।

तब तक चौरंगी भी कहीं से आ गया था, उसका बड़ा लड़का भी पास ही खड़ा था, भवानीदास कोठी के चबूतरे पर जरा हट के बैठा था—

'आखिर यह भी तो आपका सम्बन्धी है, बात करने में क्या हर्ज है? स्वामी जी ने धीरज से कहा—

'सम्बन्ध वाली मर गई महाराज, बहुत बातें कर लीं और सुन लीं, इसने (इशारा चौरंगी की ओर था) सम्बन्ध वाली कोई बात रखी भी हो। आप चाहें तो हम शान्ति से घड़ी दो घड़ी यहाँ बैठें, यदि यह भी नहीं तो हमें जाने की आज्ञा दीजिए, चल भाई धर्मदेव चलें—

इतना कह पण्डित जी ने अपना साफ़ा सिर पर रखा और आन की आन में हस्पताल के सदर दरवाजे से बाहिर चले गए—

'इनकी ऐसी ही बातें रहीं, देख लिया इनका स्वभाव', यह कह स्वामी जी तो सिंह की तरह चौकड़ी भरते, दीवार के ऊपर-ऊपर से भागे और दोषी द्वार की ओर दौड़ा, और उन्होंने पंडित वसंतराज को जा घेरा और उन्हें शान्त करके ले आए।

दोषी कह रहा था—मौसा जी, नाखून से गोश्त अलग नहीं हो सकता, बात को सुलझाना ही अच्छा है, आप तो यों ही घबरा गए।

पण्डित वसंतराज फिर आकर कुर्सी पर डट गए, सामने एक कुर्सी पर स्वामी जी हाथ में छड़ी लिए बैठे थे, दोषी के बगल वाली कुर्सी पर चौरंगी खद्दर का सफेद साफा सिर पर बांधे बैठा था, बड़ी-बड़ी घनी मूंछों में से सांप की सी छोटी-छोटी आँखें इधर उधर घूम रही थीं, नथने फूल रहे थे, मुख पर क्रोध था पर दबा हुआ, आज चौरंगीलाल में वह तेजी नहीं थी, शायद इसलिए कि उसका पार्ट आज स्वामी जी ही कर रहे थे।

सब चुप चाप बैठ गए तो धर्मदेव ने बात शुरु की—दोषी को सम्बोधित करते हुए वह बोला—

'भाई साहिब यदि इसनें सम्बन्ध का दम ही रखना था तो बीती बात भुलाकर काठकफन लेकर आता, न हुआ तो आखिर क्रिया के दिन पगड़ी भेजता, इनका कर्त्तव्य था। अपनी लड़की की शादी में इसने हमें बुलाया नहीं, हमारी माता जी मर गई हमारे दुःख और शोक में यह शामिल न हुआ तो बात किस बिरते पर करें—रूठे हुए सम्बन्धी हर्ष शोक के अवसर पर ही मिल सकते हैं—हर्ष की बात इसके घर थी हमारी उपेक्षा की गई, शोक हमारे था तब इसने हमारी बात न पूछी—

'यह मामा जी की गलती थी, इन्हें पगड़ी भेजनी चाहिए थी।

चौरंगी कुछ कहने वाला ही था कि स्वामी जी ने आग्नेय नेत्रों से धर्मदेव की ओर देखा और पूरे ज़ोर से बोले—

'तू हमें जानता नहीं हम कौन हैं, अभी तक तुम्हें जो सजा मिली है उसे पहचानता नहीं, और उन्होंने हाथ की छड़ी उठाई, धर्मदेव ने समझ लिया अब उसकी खैर नहीं वह पिटने के लिए सावधानी से खड़ा हुआ चाहता था कि इतने में भवानीदास ने उनके हाथ से छड़ी छीन ली, स्वामी जी पर क्रोध इतना गालिब आ चुका था कि वे उसके ताप से कांप रहे थे और उन्होंने हाथ की बन्द मुट्ठियों से अपना माथा पीटना शुरु कर दिया, मुंह से हूँ-हूँ की आवाज निकल रही थी। और मुट्ठियाँ माथे पर भी चल रही थीं, जैसे ज्वाला मुखी के बाजारों में धूप बनाने वाले धूप की सामग्री पर मूंगली चलाते हैं।

पण्डित वसंतराज ने उठ कर उनके हाथ पकड़े, दोषी ने उन्हें सम्भाला, भवानी उन्हें पकड़ कर ज़रा उधर ले गया—

शान्ति रखिए महाराज जी, यह आप क्या करने लगे, 'पंडित वसंतराज ने कहा—

धर्मदेव आश्चर्य चकित कुर्सी पर बैठा रहा, उसकी बुद्धि कुछ क्षण तो काम न कर सकी, सोच विचार स्तम्भित हो गए, और स्वामी जी

जरा सावधान होकर उधर ही आए तो उसने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज जी आप उधर ही रहिए, हमें बात करने दीजिए, फिर आप को क्रोध आ जाएगा—

अच्छा-अच्छा तुम बात को जारी रखो, हम नहीं आएंगे। और स्वामी जी उधर चले गए जिधर इमारत का काम हो रहा था, परन्तु उनका मन, कान आंखें इधर ही थीं—

बात तो यहीं खत्म हो जानी चाहिए थी, पर स्वामी जी का मन अभी न भरा था, वे उसे जारी रखना चाहते थे—

दूर से ही बोले—चोरंगीलाज अब क्यों चुप बैठा है, तू भी अपनी सुना, धर्मदेव ने 'पण्डित जी की ही सुनी है तुम्हारी तो नहीं सुनी' इतना कह उन्होंने मजदूरों की ओर ध्यान देने का बहाना किया, और चौरंगीलाल कहने लगा—

मैं सच कहता हूं—मैंने पण्डित जी को कुछ नहीं कहा बल्कि इन्होंने मुझे कहा कि तू यहां से चला जा हमारे घर में झगड़ा न कर—

'यह बात तो नहीं, मामा जी दोषी बोला, वहां तो गली मुहल्ले वाले भी मुझे कह रहे थे कि तुम्हारे मामा ने बड़ी जयादती की, अच्छा छोड़िए आपको पगड़ी पहुंचानी चाहिए थी—

मैं रीति रिवाज का गुलाम नहीं ?

'फिर लड़की की शादी में बारात बुलवाई, दान दहेज दिया, सब कार्य व्यवहार किए वह क्यों ? धर्मदेव ने निर्भीकता से कहा, यों इस घटना से पूर्व वह मामा से बहुत डरता था, उसके सामने उसके होश उड़ जाया करते थे। .

'यह तो फिजल की बात है, 'चौरंगी ने टालते हुए कहा—'बात तो तभी बिगड़ी जब तुम बहू को लेकर उदयपुर गए थे, तुम्हारा वहाँ जाना मुनासिब नहीं था।

मुनासिब क्या है क्या नहीं इसे सुनोगे तो आग बबला हो जाओगे

मामा जी, और धर्मदेव वह बात कहने वाला था कि पंडित जी ने इशारे से रोका, वह समझ कर टाल गया और बात का रुख बदला—

उदयपुर में मेरे ससुर मामा रहते थे, वहाँ जाने में कोई खराबी न थी, आपने क्यों जान बूझकर लड़की वालों का पक्ष लिया, हमारे स्व-भाव को आप नहीं जानते क्या ? हमसे आपको खून का रिश्ता, आपसे वर्षों की मुहब्बत, प्यार वह क्षण भर में खत्म हो गई और आप लड़की वालों का पक्ष ले बिना जाने बूझे अपने बहनोई से उलझ पड़े, उसके घर में जाकर सरे बाजार उसका अपमान किया, उसे भूखा ब्राह्मण और लालची तक कहा—जोश में आकर धर्मदेव कहता गया,

तब चौरंगीलाल खड़ा होगया—मैंने पंडितजी को ऐसी कोई बात नहीं कही—

क्यों सरासर झूठ बोल रहे हो चौरंगी, कुछ तो भगवान से डरो—पंडित बसंतराज बोले—तुम तो जेल और थाना भी दिखा रहे थे मामा जी,

इतने में फिर स्वामी जी महाराज वहीं से पञ्चम सुर में बोलते हुए आगे आए—

चौरंगी का तुम विश्वास नहीं मानते, वह झूठ बोलता है—अच्छा चौरंगी रक्खो बेटे के सिर पर हाथ–इधर आ शशिकांत, और शशिकांत जैसे ड्यूटी बजाने वहाँ खड़ा था, झट आकर पिता के पार्श्व में खड़ा हो गया, चौरंगी ने उसके सिर पर हाथ रखा ही था और अभी कुछ भी कह न पाया था कि धर्मदेव झट बोल पड़ा—

महाराज जी आप फिर आगए, आपका गला बैठा जा रहा है, आप हमें बात तो करने दीजिए—

अब कि स्वामी जी खिसियाने से फिर गुरु मंदिर की दीवार की चिनाई जहाँ हो रही थी उधर ही हो लिए, पर उनके कान पीठ पर ही लग जाना चाहते थे, और आंखें गर्दन पर उतर कर घूम जाने का प्रय-त्न कर रही थीं—

इतने में भवानीदास ने दूर से चबूतरे पर बैठे ही कहा—भाई धर्मदेव, मान लिया पं० चौरंगीलाल झूठ बोल रहे हों, या फिर यह भी सँभव है पंडित जी ही सत्य न कह रहे हों क्योंकि दोनों का अपना-अपना पक्ष है, इस पर वे स्थिर हैं, परन्तु महाराज जी तो इस सम्बन्ध में असत्य नहीं कह सकते, वे तो निष्पक्ष हैं, उनका इस मुआमले में कोई स्वार्थ नहीं—

ठीक कहते हैं आप, 'धर्मदेव ने गंभीरता से उत्तर दिया, यों तो महाराज जी झूठ न बोलते हों पर इस मुआमले में उन्होंने झूठ भी बोला और पक्षपात से भी काम लिया—

वह जल्दी से सारी बात कह जाना चाहता था इसलिए उसने भवानीदास के 'कैसे ?' कहने की भी प्रतीक्षा न की, क्योंकि स्वामीजी फिर इधर ही हल्ला बोलने वाले थे, दो कदम बढ़ा भी चुके थे—

महाराज जी दिल्ली गए तो मैंने जब पूछा कि खुशहालचंद नूरपुर आया होगा, मामा जी के पास रोया होगा तो महाराज जी साफ ही झूठ बोल गए—कहने लगे हमें तो पता नहीं, न वह वहां आया ही था, जब कि मामा जी के पत्र से ही मुझे पता लगा कि वह सबसे पहले डेरे में इन्हीं के पास आया था—रही पक्षपात की बात······

बात अभी उसके मुँह में ही थी और भवानीदास ने धर्मदेव की बात सुनकर दाँतों तले अंगुली दबा नजर नीची करली थी, कि स्वामी जी क्रुद्ध सांड की तरह सिर हिलाते दो कदम आगे बढ़े और फिर दो कदम पीछे हटे और उन्होंने धावा बोल दिया—

जोर जोर से कहने लगे—

मैं झूठा, मैं पापी, मैं पक्षपाती, मैं तो मानता हूँ मैं पापी हूँ—यह कल का छोकरा मुझे कह रहा था, लोग कहते हैं भीमदेव मिल से कपड़ा लाकर मामा को देता है—मुझे कहने लगा, भाई का पक्ष क्यों करते हो—तुमने दोषी से हमारी निन्दा नहीं की—शर्म नहीं आती तुम्हें—

'इसमें निन्दा की क्या बात है महाराज जी, मैंने भाई दोषी के पास

अपना दु:ख रोया था, जो बात कही थी वह अब भी सबके सामने कहने को तैयार हूँ—यह तो निन्दा नहीं, और आपने घर घर हमें लोभी और लालची बताया, बल्कि हम पर अत्याचार भी हुआ और हम ही पिटे—धर्मदेव ने कहा—

जो बातें दोषी से हुईं मेरे सामने ही तो हुईं महाराज जी, वह सामने ही तो खड़ा है, पूछ लीजिए—पंडित जी बोले।

क्या पूछें और क्या न पूछें, स्वामीजी भुजा उठाकर बोले, पर अब कि उन्होंने माथे को पीटा नहीं—तू बड़ा सीधा बना फिरता है, उस दिन तूने खूबसूरतलाल की बात न मानी, जसोदा को सिखा पढ़ा कर यहाँ भेज दिया, मैं ही सबसे बुरा हूँ—अरे मैं तुम्हारे लिए उमरी से भी गया बीता था—यह कहते हुए वे चार कदम और आगे आए, भुजा हवा में लहरा लहरा कर बोले—बता मैं उमरी से भी गया बीता था।" धर्म देव हैरान था यह उमरी का बेसुरा राग क्यों अलापने लगे, बात समझ में आ गई, पंडितजी को बदनाम जो करना है उनकी इज्जत पर वार करना शेष था, पंडित वसंतराज अपने में मरे जा रहे थे वे सिर नीचा किए धीरे-धीरे फाटक की ओर सरकने लगे—

बिल्डिंग का काम करने वाले और इधर उधर के सब लोग इकट्ठे हो गए, डाक्टर सीतावल्लभ और वैद्य दाऊ जी भी हस्पताल छोड़कर भागे आए—स्वामी जी दो कदम और आगे बढ़े—

'तूने मेरे हस्पताल का सत्यानाश कर दिया, दो महीने यहाँ मुफ्त की खाई।'

दो महीने जान तोड़कर काम भी किया था मैंने—पंडित जी ने उत्तर दिया।

'काम किया था खाक, तूने मेरे ८६) हजम कर लिए, समझ लिया जैसे नृसिंह शर्मा करता रहा वैसे ही करेंगे—

अब पंडित वसंतराज को भी ताव आ गया परन्तु पढ़े लिखे थे, संयतभाषा का ही व्यवहार किया—

महाराज जी, हिसाब-किताब रजिस्ट्रों में अब भी मौजूद है, व्यर्थ किसी पर इलजाम लगाना आपको शोभा नहीं देता, लाइए रजिस्टर बही खाता, कराइए हिसाब किताब की पड़ताल जो लेना हो ले लीजिए जो देना हो दीजिए यह उपकार का अच्छा बदला दे रहे हैं आप, मंगवाइए सब रजिस्टर।

स्वामी जी उनकी अनसुनी कर अपनी हांकने लगे—

मैं जानता हूँ तुम्हें—तू बना क्या फिरता है, बड़ा पं० बना फिरता है, वे पंडित जी के और भी नजदीक आ गए—

पंडित तो मैं हूँ ही, जैसा भी हूँ पर आप, ऐसी बातें आपको शोभा नहीं देतीं, आप तो गुरुदेव हैं।

और गुरुदेव स्टार्ट हो रही मोटर की तरह दो कदम पीछे हटकर उछले, जरा आगे सरके।

"गुरुदेव गुरुदेव कहते हो" और हमारी भैन की देते हो—चरणों में हाथ भी लगाते हो और हमारी ऐसी की तैसी भी करते हो—

'चल धर्मदेव, बहुत करा लिया मान, अब बाकी क्या देखने खड़े हो—पंडित वसंतराज ने कटुता से कहा, और दोनों चल पड़े—

हाँ जाओ जाओ यहाँ से, फिर कभी हमारे डेरे में न आना, कभी नहीं—स्वामी जी दूर से चिल्लाने लगे—

नहीं आएंगे, बड़ा शौक पूरा कर लिया यहाँ आकर—कोई कसर नहीं रहा।

चलते-चलते धर्मदेव मुँह में बुडबुडाता रहा—पीछे से रुक-रुक के रिंग मास्टर के हंटर सी एक और चिल्लाहट आई—स्वामी जी कह रहे थे—

हमारे जीते जी कभी डेरे में न आना।

पंडित वसंतराज आगे थे वे तो सिर झुकाए चलते रहे, परन्तु धर्मदेव ने एक बार पीछे पलटकर देखा, जैसे हिरण गोली की आवाज सुनकर चौकड़ी भरता हुआ देखे किसके लगी, पर नहीं जानता उसी

पर वार हुआ है, दो चार गज भागकर लड़खड़ाता है, तब मालूम पड़ता है, वही जख्मी हुआ है।

धर्मदेव कुछ इसी हालत में दस कदम चलकर सड़क पर आया और दोनों बाप बेटा चुप, सामने हलवाई की दुकान पर बैठ गए, हारे से पिटे से, कटे से, तड़प न सकते थे, बोल न सकते थे, हल्क सूख कर काँटा हो रहा था, कहाँ समा जाए, दिसम्बर की कड़कती सर्दी में भी प्यास लग रही थी, हस्पताल से दोषी और चौरंगीलाल निकल कर बातें करते खेतों की ओर चले जा रहे थे, कोई झूठ सच उन्हें धीरज दिलाने वाला भी न था—हलवाई से पानी माँगकर पिया, गाड़ी आने में अभी ३ घंटे शेष थे फिर भी दोनों सूने स्टेशन पर बैठे। गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे, पैदल चलकर जाने की हिम्मत न थी, धर्मदेव के हाथ में बर्फी का प्रसाद थैले में रक्खा वैसे ही लटक रहा था, वह सोच रहा था—

धर्म गया, धन भी गया, इज्जत भी गई, मन का सहारा भी टूट गया, घर में सब से अधिक श्रद्धा और भक्ति गुरु जी में उसी की थी। वह तो उन्हें साक्षात भगवान मानता था, इष्टदेव भगवान ही नहीं भगवान से भी ऊपर, अब वह क्या करेगा, वह एकांत में बैठकर रोना चाहता था जी भरकर रोना, पर पिता उसके साथ बैठे थे, वे भी जाने क्या सोच रहे थे कि जरा फीका सा मुस्कराए।

कहने लगे—महाराज को ८६) नहीं ४०) कहने चाहिए थे। ४६) पहिले दिए थे, सो उनका हिसाब किताब तो लिखा रक्खा है—कहां-कहाँ खर्च किए—४०) मुझे उन्होंने दिए थे, सो मैंने फिर वापिस उन्हें लौटा दिए थे, लेकिन जाने वही दस-दस के चार नोट मेरी जेब में कैसे आ गए, गाड़ी में बैठा तो तमाखू की डिबिया के साथ हाथ आ गए थे,'' और उन्हें तमाखू भी याद आ गया और वे सुरती बनाने लगे, 'तब तक गाड़ी चल चुकी थी, वे रुपए मैंने फिर वापिस भी नहीं किए—तुम्हारी माँ कहा करती थी अपना सामान वहाँ से ले आओ, दो खरल हैं, पूरे

फर्श की बड़ी दरी है, चारपाई है, दवाइएं हैं, पुस्तकें हैं, पर मैंने कहा चलो जाने भी दो जो गया सो गया। संतों से मुझे ऐसे व्यवहार की आशा न थी, धर्म, और तुम्हीं लोगों ने कह कहकर मुझे हस्पताल के काम के लिए उकसाया ही नहीं मजबूर किया था और यह मिला उसका फल, यह तो अच्छा हुआ तुम बौखला नहीं गए वर्ना मुसीबत आ जाती, वे तो गुण्डा गर्दी पर उतर आए थे, ऐसी भयंकरता राम, राम, यह हैं महापुरुष, ईश्वर के शरीक, यह संत महात्मा........

धर्मदेव क्या बोलता, उसकी समझ उसे जवाब दे रही थी, वह चाहता था जल्दी से गाड़ी आए और घर पहुँचे।

इतने में मुसाफिर आने लगे, कुछ तो उनके गांव के ही थे, वे पंडित वसंतराज के पास जा बैठे और इधर-उधर की बातें होनें लगीं। पं० वसंतराज यात्रियों के साथ बात चीत में अपने को खोने का यत्न करने लगे, पर धर्मदेव वैसे ही शून्य में तक रहा था, कभी-कभी गाड़ी की लाइन पर आँखें बिछा देता था, वह जल्दी भी न आती थी।

१४



धर्मदेव पिता के साथ घर पहुचा और उसके पिता जी ने जब सब वृतांत घर के किवाड़ बंद करके सुनाया तो सभी के हृदयों को ठेस पहुँची, और सब के सब एक-एक करके धर्मदेव पर टूट पड़े।

भाई साहिब ही सबको वहाँ घसीट ले जाया करते थे, और डेरे की सेवा के लिए मजबूर करते थे, मैं वहां पढ़ता था, भिक्षा लाने वाला कोई साधु न रहा तो मुझे जाना पड़ा, मेरा मन न मानता था, मेरे साथी क्या

कहेंगे, लज्जा आती थी, पर भाई साहिब के आग्रह से घर-घर भिक्षा मांगकर भी लाता रहा भीमदेव ने कहा। तब बोली उसकी पत्नी।

'स्वामी जी की फोटो की ओर भूल से कोई पीठ करके तो बैठ जाए बस इन्हें गुस्सा आ जाता था, घर में कोई चीज कोई कपड़ा बच्चों के जूते आएं न आएं पूछो कभी सिनेमा सैर तमाशे कहीं ले गए हैं, पैसे पास नहीं और डेरे के पैसे कभी न रुकते थे। खुद कभी अच्छे कपड़े नहीं पहने पर डेरे के ३०) मासिक पूरे होने चाहिए कभी कमार कोई बाहिर का काम किया या आमदनी हुई तो उसमें से भी डेरे भेज रहे हैं। छोटी बहिन कहने लगी—

हें तो हमारे गुरुदेव पर उन्होंने बड़ी ज्यादती की है, भाई साहिब के कहने पर हमने डेरे और हस्पताल के लिए चंदा बांध लिया और जैसे भी हो सका भेजते रहे और अभी इसी वर्ष ४५०) का एक नया रेडियो सेट देकर आए, ड्राई बैटरी सेट—बैटरी साथ अलग—"बड़ी बहिन भी क्यों पीछे रहती ।

'माता जी के लाख मना करने पर भी ५००) की इमारती लकड़ी वहां भिजवादी, और भाई साहिब के नाम जो मकान था शहर में वह भी डेरे के नाम कर दिया।

'तुम क्यों नाहक उसके पीछे पड़ी हो, सब की सब, भावना में बहकर आदमी जाने क्या कुछ कर जाता है, चलो हमने तो सब पुण्यार्थ ही किया, कुछ दिया ही लिया तो नहीं उन्होंने हमें गालियां दीं, निरादर किया, बेईमान कहा, पर हमने तो एक शब्द अपने मुख से उनकी शान के खिलाफ नहीं कहा।

'मैं होता तो.......भीमदेव कहने ही वाला था कि पंडित जी ने बात काट दी।

तुम दंगा ही न करते तब तो उनकी विजय थी, हमने शराफत को हाथ से न जाने दिया, करने को तुम्हारा भाई कोई कम तो न था, पर वह तो पशुता होती, चलो डेरे का हमने कुछ खाया होगा तो उससे

बीसियों गुना सेवा भी की है, बदले की भावना हमारे मन में क्यों आए फिर डेरे का लालच उसे हो जो वहां से पेट पालते हैं. मुझे तो हैरानी इस बात की है, उन्हें जनता के धन से बने हुए अपने महल अटारियों का कितना मान और गर्व है, समय न था, नहीं तो कहता महाराज हमें तो निकाल रहे हो पर खुद कब तक इसे संभाले रहोगे, मिट्टी का ऐसा मान, इतना मोह किसी दिन छोड़कर जाना पड़ेगा, तब क्या करोगे।......

और भी बातें होती रहीं—जल्दी ही बाद धर्मदेव परिवार सहित दिल्ली आ गया। उसके घर भगवान के चित्रों के साथ ही स्वामी जी के फोटो भी रखे थे, प्रातः सायं उसी तरह धूप दीप से पूजन भी होता है। आरती भी गाई जाती है—सतगुरु पारस रूप हैं हमारी लोहा जात—यह पाठ भी होता है, गुरु महाराज की जय भी बुलाई जाती है, पर यह सब की वर्षों की बातें हैं, पुरानी आदतें कैसे टूट सकती हैं पर दिल उसका टूट चुका है, शून्य सब ओर से शून्य किसी में उसका विश्वास नहीं प्रयत्न करने पर भी वह घटना उसके हृदय में घटती रहती है, जब बैठता भरोसा नहीं, बार बार है तो वहीं बातें—रघुवर नारायण उसकी सुन लेता है, परन्तु यही कहता है—तुम सच ही कहते हो परन्तु स्वामी जो ऐसे कैसे हो सकते है, तुम्हीं न कहा करते थे वे सर्वज्ञ हैं, सर्वद्रष्टा हैं, इस पर वह खीज उठता है—

तब उन्होंने ऐसा व्यवहार क्यों किया, सत्य और न्याय को क्यों कुचला।

'भगवान की इच्छा में तुम बाधा देने वाले कौन और फिर वे जो करें सो ठीक—

रघुवर नारायण के इस उत्तर पर वह जल ही जाता है, बल खाके उठ खड़ा होता है।

स्वामी जी अब भी कभी कभी दिल्ली आते हैं। पहले तो ठहरते ही धर्मदेव के पास थे अब उसे उनके आने और चले जाने की खबर ही नहीं मिलती, रघुवर नारायण से भी वे कन्नी काट जाते हैं।

उपसंहार

अब कहने को कुछ भी शेष नहीं रहा, इसलिए सोचता हूँ, ऐसी घटनाएँ क्यों घटती हैं, यह सब किसका दोष है। इस सारी घटना का दर्शक, उसका पात्र, और उसे वर्णन करने वाला भी खुद मैं ही हूँ, यह सब कुछ देख सुन कर अपने में ही खो गया हूँ, समझ नहीं सकता ऐसा क्यों होता है ?

यह साधु संत क्यों अपने को धोखा देते हैं, अपनी पूजा करा, अपना चरणामृत और चरण धूलि बाँट कर इन्हें क्यों प्रसन्नता होती है। क्या अपने को पुजवाते-पुजवाते यह पत्थर नहीं हो जाते। इनमें का इन्सान धीरे-धीरे मर नहीं जाता। इन साधारण मानवों को देवता ही नहीं भगवान बनाकर जब पूजा जाता है तो पूजने वाले इनमें देवत्व की स्थापना करते हैं, ईश्वरत्व ढूँढ़ते हैं, और उसी का आभास उनकी भावना यहाँ आरोप करती है, परन्तु होता यह है कि इनमें तो देवत्व आ नहीं पाता, मानवता को भी खो बैठते हैं, निरे पत्थर बन कर रह जाते हैं, जीवित पत्थर, जिनकी पूजा करने वाला भी अपने आप को खो बैठता है, कुछ हाथ नहीं लगता, सत्य की खोज में सत्य से दूर चला जाता है। यही है संत समागम और उसका फल, और यह थी धर्मदेव के संत समागम की अंतिम कड़ी, उसके साधना पथ का अन्त।